* श्रीसीतारामाभ्यां नमः *

भूमिका

"श्रीसीताराम वचनामृत" के अवलोकन का सौभाग्य मिला। त्रिपाद विभूति नायक परात्पर पूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीजानकीरमणजू के चरण कमल अनुरागी सन्त श्रीसीताशरणजी प्रिया-प्रियतम प्रेम पगे रस रंग रीति सने भावुक हृदय हैं। मधुरातिमधुर दिव्य लीला स्वरूपों के कौतुक हेतु सेवा समर्पित दिव्य वाणी, अत्यन्त मनमोहक शिक्षा प्रद प्रीति वर्द्धक है। सन्त की वाणी सदा रसमयी होती है, क्योंकि वे "रसोवैसः" सिद्धान्त से दिव्य रस का आस्वादन करते रहते हैं।

दिव्य धाम अयोध्या (साकेत) में प्रिया प्रियतम, परिकरों के सुख हेतु नित्य नूतन लीलायें करते रहते हैं। सभी लीलायें प्रकृति से परे उस दिव्यधाम में सदा होती ही रहती हैं। अवतार काल में सर्वजन सुखाय भूतल पर होती हैं। साकेतधाम में श्रीयुगलसरकार के अवतार हेतु परस्पर

जानकीशरण भृंगारी

का सम्वाद जिसकी पृष्ठ भूमि 'श्रीजानकी चरितामृत' को है बड़ी अनोखी है। प्रेम माधुरी में छका प्रेमी परस्पर सम्बाद के प्रेम सरोवर में डूबे विना नहीं रह सकता। बृज के रसियाओं की पद्धति के अनुसार रचित, मिथिला एवं अवध धाम का वर्णन रसिकों को हठात आकृष्ट करता है। "भक्तमाल" प्रकरण वस्तुतः भक्तों के हृदय की माला है जो इसे धारण करेंगे। वे अनपायनी भक्ति प्राप्त करेंगे। साधना मार्ग में सबसे श्रेष्ठ सद्गुरु का स्थान है।

अतएव "श्रीगुरुमहिमा' का ज्ञान सभी कल्याणिच्छुओं को अवश्य होना चाहिये। भक्तलक्षण स्त्री शिक्षा आदि विविध भावों से भरे, प्रेम रस पगी, सन्त कवि की वाणी से झरी भक्तों के हृदय में पड़ी साकेत सुषमा सभी प्रेमियों को हर्षित करे।

प्रेम भिक्षुः-

महान्त-नृत्य गोपालदास

अनन्त श्रीमणिरामजी की छावनी।

नम्र-निवेदन

प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्रीसन्तवृन्द, श्रीसीताराम पादारविन्द मकरन्द रस रसास्वादन परायण महानुभावों के समक्ष यह श्रीसीताराम बचनामृत नाम की लघु पुस्तिका प्रस्तुत है। जिसमें भक्तों के हृदय कमल में, मधुकर सदृश्य प्रेम-रस मकरन्द पानकर, परस्पर प्रीति में पगे हुये श्रीप्रिया प्रीतम जू का पारस्परिक नानाप्रकार का, प्रेम विनोदमयि बचनामृत भरा है। इसमें जो भी श्लोक, दोहा, चौपाई, पद, छन्द, और गद्य में सम्वाद लिखा है। वह सब अपने राम को जहाँ जहाँ जिनजिन महापुरुषों से जैसा प्राप्त हुआ है। ठीक उसी प्रकार उसका प्रकाशन किया गया है। केवल प्रभु कृपा प्रसादित बुद्धि से यथा शक्ति संशोधन भी यत्र तत्र कुछ हुआ है। अपनी ही नासमझी के कारण छोटी सी पुस्तक में बहुत सी गल्तियाँ हो गई हैं। सज्जन महानुभाव सुधार कर पढ़ लेंगे, श्रृंगारी महानुभावों से निवेदन है, कि-लीलाबिहारी श्रीयुगलसरकार की सेवा में सुधार कर के इस पुस्तकको लगावैं। पूर्ण आशाहै कि-महानुभाव त्रुटियों की क्षमाप्रदान अवश्यमेव ही करेंगे। लीला बिहारी श्रीयुगल-सरकार की असीम अनुकम्पा से, यह कार्य किसी प्रकार सम्पूर्ण हुआ, उनकी वस्तु उन्हीं को समर्पित हुई, इसका श्रेय पूर्णरूप से श्रीयुगलसरकार श्रीसीतारामजी को ही है।

क्षमा—प्रार्थी

श्रीसन्तचरणरजाश्रित सीताशरण

सम्वत् २०२८ विजय दशमी,

❋ श्रीयुगलसरकार का मङ्गल ❋

सदा मङ्गल सदा मङ्गल, सदा जोरी का मङ्गल हो
हमारी सिय सोहागिनि का, सदा पिय संग मङ्गल हो।
सदा मङ्गल जनकपुर का, सिय। पितु मातु का मङ्गल
सदा मङ्गल अवधपुर का, पिया पितु मातु मङ्गल हो।
सदा मङ्गल प्रमोदबन का, हो मङ्गल रास मण्डप का
सिहाँसन छत्र का मङ्गल, चँवर दुहुँ ओर मङ्गल हो।
सखा पिय दासों का मङ्गल, सिया सखि दासिका मङ्गल
अली श्रीचारुशीला का, सदा मङ्गल सु मङ्गल हो।
सदा बाजा बजें मङ्गल, अलीगण गावहीं मङ्गल
जो नृत्यत हैं नवेली गण, सदा सङ्गीत मङ्गल हो।
न हो कभी मान प्यारी को, दुखावैं दिल न प्रीतम का
सदा अँग अङ्गसे अरुझे, निहारें नेह मङ्गल हो ॥सदा०
जयति गुणशील छवि आगरि, कृपा करुणा भरी स्वामिनि
पिया रस रँग रँगीं सन्तत, हृदय में परम अभिरामिनि।
जयति प्रीतम बदन बिधु लखि, बनी निशिदिन चकोरी की
मनहुँ घन बीच चपलाइव, लसति छवि श्रीकिशोरी की।
जयति रसिकेश जीवनधन, रसिक रसदान सुकुमारे
जयति हृदयेश सिय साजन, अवध नृप नयन के तारे।
प्रिया के प्रेम में पागे, प्राण प्रीतम मधुर मन हर
दिये गलबाहँ गुनशीला, बसैं प्रेमिन के मन मन्दिर।

❋ श्रीसाकेत सुषमा ❋

श्रीसाकेतधाम में श्रीयुगल सरकार का अवतार हेतु परस्पर सम्बाद

दोहा–नित्य सच्चिदानन्दमय, विलसत श्रीसाकेत।
जहँ विहरत सीतारमण, परिकर वृन्द समेत ॥ १ ॥
परम प्रभामय दिव्यतम, अच्युत अमल अनूप।
साश्वत सुन्दर एकरस, धाम प्रेम रस रूप ॥ २ ॥

छन्दः–जहाँ न शृष्टि न प्रलय होत, कबहूँ केहु काला।
सन्तत लीला होति, मधुर मनहरण रसाला ॥ १ ॥
जहँ नहिं अग्नि न चन्द्र, सूर्य किरणै न प्रकाशै।
स्वयं प्रकाश स्वरूप, धाम प्रतिभा प्रतिकाशै ॥ २ ॥
सब धामन को मूल, परम पावन ते पावन।
जासु अंश सब धाम, अमल अनवद्य सोहावन ॥३॥
जहँ नित नवल विहार, करत सीता वल्लभ प्रभु।
परतर परम परेश, प्रेम पूरक उदार बिभु ॥ ४ ॥
अज अनन्त अनवद्य, अलख अविगत अविनासी।
अकथ अनीह अनूप, अखिल जीवन उर बासी ॥५॥
व्यापक व्याप्य विभूति, वदत वर बिबुध वेद विद।
कृपासिन्धु कमनीय, केलि क्रीड़ा रत सत चिद ॥६॥

वार्ता—ऐसे परात्पर नित्य एकरस त्रिगुणातीत सच्चिदानन्द श्रीयुगल सरकार एकान्त स्थल में विराज रहे थे। नित्य परिकर वृन्द युगल मुखचन्द्र की चकोरी सदृश एकटक माधुरी पान कर रहे थे। अनेकानेक सुवाद्यों को बजाकर श्रीयुगल सरकार के गुणानुवादों का गान हो रहा था। एकाएक श्रीकिशोरी जू का मुख मयंक मलीन होगया यह देखकर परम आश्चर्य चकित होकर श्रीरामजी बोले--कि हे प्राण प्रिये !

श्लोक–किमर्थं प्राणेशि ! बिधु निकर सम्मोहि बदनं,
तवेदं सम्लानं कथय करुणापूर्ण हृदये।
रमोमा वागीशाश्चरण कृपयाऽपारगतयो-
ऽप्यहोनाना लोके प्रथित विभवास्तेस्थिर गुणाः ॥१॥

दोहा–मुख मयंक तव म्लान भो, कहिय प्रिये क्या बात।
हे करुणा पूरण हृदय, लखिमम मन अकुलात ॥१॥
जिनकी कृपा कटाक्ष ते, रमा उमा ब्रह्मानि।
जग प्रसिद्ध ऐश्वर्य अरु, लह्यो अचल सनमान ॥२॥
जाकी महिमा अति अगम, वेद न पावत पार।
स्थिर गुण एक रस सदा, चिन्मय दिव्य उदार ॥३॥
सहज सुहृदता तव निरखि, हूँ मैं तव आधीन।
भो उदास मुख मंजु क्यों, कहिये प्रिये प्रवीन ॥ ४॥

अर्थः—हे श्रीप्राणप्रिया जू! अनन्त चन्द्रमाओं को भी अपने स्वच्छ प्रकाश तथा अह्लादगुण से मोहित करने वाला, आपका यह मंजु मुखमयंक मलीन होने का क्या कारण है। करुणा से परिपूर्ण सागर के समान हृदय वाली हे श्रीप्रिया जू! आप अपने मुख मलीनता का कारण कृपया मुझे बतलाइये।

जब कि-आपके श्रीचरणारविन्दों की आश्रिता श्री-लक्ष्मीजी, श्रीपार्वतीजी, श्रीब्रह्मानीजी, आदिकों को आपकी कृपा से पार न पाने योग्य अपार महिमा और जगत प्रसिद्ध ऐश्वर्य तथा सदा स्थिर रहने वाले दिव्य गुणगण अनायास ही प्राप्त हैं। अनन्त ब्रह्माण्डों में अनन्त त्रिदेवियाँ आपको कृपा से पाई हुई शक्ति के द्वारा अनन्त ब्रह्माण्डों की सृष्टि पालन तथा संहारकरती हैं।

श्लोक–प्रिये यद्वामस्त्तस्तव भवतु चिन्तापहरणं,
तदाख्यातुं कार्या सपदि हि कृपाते प्रियतमे।
नहि द्रष्टुं शक्तोऽस्म्यहमपरि तुष्टेन्दु वदनं,
प्रबुध्यै तत्सत्यं हृदयगत भावं प्रगटय ॥२॥

दोहा–हे प्यारी हमसे अगर, हो तव चिन्ता दूर।
कहने की करिये कृपा, करौं यतन भरिपूर ॥ ५ ॥
तव मुखचन्द्र न लखि सकौं, मैं पल एक मलीन।
कहिय हाल निज हृदय को, क्यों मलीन मुखकीन ॥६

अर्थ—अथवा हे प्रिये! यदि मुझ से ही आपकी चिन्ता दूर होने वाली हो, तो शीघ्र मुझसे कहने की कृपा कीजिये। क्योंकि आपका मुर्झाया हुआ श्रीमुखारविन्द दर्शन करने में मैं एक पल भी समर्थ नहीं हूँ। इस बात को सत्य जानकर अपने मुख मलीनता के कारण स्वरूप हृदय में आये हुये अपने भाव को शीघ्र ही प्रगट कीजिये। मैं यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा।

❀ श्रीसीतोवाच ❀

श्लोक—अहो प्राण प्रेष्ठ! क्षिति तल मधोदृष्टिरभितो,
यदृच्छा संप्राप्ता ममहृदय चिन्तैक जननी।
व्यवस्थां तत्रात्या! प्रियवर समीक्ष्याति करुणा,
प्रजाता मे चेतस्यविरलतया कारण मिदम्॥

दोहा—हे जीवनधन आज मोहिं, चिन्ता देवन हार।
सहज दृष्टि मम भूमि पर, पड़ी जाय एकबार॥ ७॥
देख वहाँ की दुर्दशा, चिन्ता बढ़ी अपार।
अविरल करुणा भइ प्रगट, सुनिये प्राण अधार॥८॥

अर्थ—अहो प्राणनाथ जू! आज मेरे हृदय में चिन्ता को जन्म देने वाली मेरी यह सहज दृष्टि एकाएक नीचे पृथ्वी तल पर पड़ी और वहाँ की दुर्व्यवस्था को देखकर मेरे हृदय में अविरल करुणा प्रगट होगई। हे आत्मनाथ! मेरे मुख मलीनता का यही मुख्य कारण है।

श्लोक–श्रूयतां तद्वदन्त्या मे सावधानतया प्रिय।
उपायं चोचितं तस्य त्वं चिकीर्ष प्रियाय मे ॥४॥
आवयोरंश संभूता आवयोस्तुल्यविग्रहाः।
साधनाधाम संप्राप्य मुक्तिद्वारं नृणां वपुः ॥ ५ ॥

दोहा—सावधान होकर सुनिय, हे प्रियतम चितलाय।
मम प्रसन्नता के लिये, करिये बहुरि उपाय ॥६॥
हम दोउनके अंश हैं, मृत्यु लोक के जीव।
साधनधाम सुमुक्ति प्रद, नरतन सब सुख सींव ॥१०

अर्थ--हे प्यारे जू! इस समय मेरे हृदय में जो भाव आया है, उसे मैं कहती हूँ। आप सावधान चित्त से श्रवण कीजिये, तदन्तर मेरी प्रसन्नता के लिये उसका उपाय करने की इच्छा कीजियेगा।

हे प्यारे जू! ये मृत्युलोक निवासी जीव हमारे आपके ही अंश से उत्पन्न, हमारे आपके ही तुलना करने योग्य शरीरधारी, सभी साधनाओं का स्थान और मुक्ति का द्वार--स्वरूप इस मनुष्य शरीर को पाकर।

श्लोक–मोहिता माययाहन्त, विषयानन्द संस्पृहाः।
यतमानाः सुखायैव प्रायो दुःख व्रजन्ति ते ॥ ६ ॥

दोहा–माया द्वारा मोह से, ग्रसित विषय लयलीन।
पाते नहीं स्वरूप सुख, रहते निशिदिन दीन ॥११॥

अर्थ--माया के द्वारा मोह ग्रस्त किये हुये वे प्राणी, केवल विषय सुख के लिये ही लालायित हो रहे हैं। कितने खेद की बात है, कि उस विषय की साधना करते भी प्राय: वे दुख को ही प्राप्त हैं। अर्थात् उन्हें विषय सुख की भी पूर्ण प्राप्ति नहीं होती हैं।

दोहा--साश्वत दिव्य अखण्ड सुख, किमि पावैं अज्ञान।
पियत गरलसम विषय सुख, तजि स्वरूप को ज्ञान ॥१२

अर्थ--हे प्यारे जू! फिर हमारे इन दिव्य धाम निवासी जीवों का सर्वविकार रहित, पूर्ण सदा एक रस रहने वाला, यह अप्राकृत सुख उनको कहाँ से प्राप्त हो सकता है, जिसका उन्हें ज्ञान तक नहीं है।

दोहा--मेरे सतगुण रूप हो, श्रीपति धरि बहु रूप।
प्रगटत युगयुग में सदा, लीला करत अनूप ॥ १३ ॥
कूरम मत्स बराह बुध, नरहरि वामन देह।
धरत करत रसमय चरित, पावन पगे सनेह ॥ १४ ॥

अर्थ--हे श्रीप्रिया जू! जीवों के दु:ख निवृत्ति और सुख प्राप्ति के लिये ही युगयुग में हमारे सत्गुण स्वरूप भगवान विष्णु कछुआ-मीन-बाराह-बुद्ध-नरसिंह-वामन आदि बहुत रूपों में प्रगट हुआ करते हैं।

दोहा--वेद उपनिषद संहिता, शास्त्र पुराण उदार।
स्मृति मुनि द्वारा सकल, हमने कीन्ह प्रचार ॥१५॥

अर्थ--स्वयं मैंने ही मुनियों के द्वारा चार वेद, छः शास्त्र, अठारह पुराण, उपनिषद, सभी संहितायें सभी स्मृतियाँ श्रीमद्वाल्मीकीय महाकाव्य महाभारतादिक इतिहास तथा और भी अनेक धर्मग्रन्थों का प्रचार कराया है।

दोहा--तिन में झूठा कहि विषय, निन्दा कीन्हीं घोर।
माया मय बतलाय कर, सुखहित मार्ग करोर ॥ १६ ॥
प्रगटे मैंने हे प्रिये, साधन विविध बताय।
चेत करायो भाँति बहु, परजिव रहे भुलाय ॥ १७ ॥

अर्थ--हे श्रीप्रिया जू ! आप तो दयामयि ही हैं। विचार कीजिये कि उन सभी छोटे बड़े ग्रन्थों में विषय सुख की घोर निन्दा करके इस दृश्य जगत को प्रभु की माया (इच्छा शक्ति की कल्पना) मय बतलाकर जीवों के वास्तविक सुख सिद्धि के लिये मैंने करोड़ों मार्ग दिखाये हैं।

दोहा--यथाशक्ति अरु बुद्धि से, मैं किय यत्न अपार।
फिर भी जीव न सुख लहैं, तो क्या दोष हमार ॥ १८

अर्थ--हे श्रीप्रिया जू ! मैंने मृत्युलोक वासियों के कल्याण के लिये अपनी बुद्धि एवं शक्ति के अनुसार बहुत कुछ उपाय किये तथापि यदि वे सुखी न हों तो आपही कहिये कि मेरा क्या दोष है।

❀ श्रीसीतोवाच ❀

श्लोक-सत्यमेतत्परं माया मोहिनी ज्ञानिनामपि ।
तयैन वञ्चिताः श्रेष्ठ विसारेसार बुद्धयः ॥ ७४ ॥

दोहा-नाथ कहा सो सत्य पर, माया अति बलवान ।
मोहत ज्ञानी मुनिन को, उपजावत अज्ञान ॥ १६ ॥
मोहे बिषयी जीव तो, क्या आश्चर्य महान ।
तब मायावश विषय ही, लियो परम सुख मान ॥२०

अर्थ--हे श्रेष्ठ ! आपने जो कहा, वह सब सत्य है, परन्तु यह त्रिगुणात्मिका (अर्थात् तीन गुणमयी) माया-ज्ञानी मुनियों को भी मोह में डाल देती है। अर्थात् कर्त्तव्य के ज्ञान से विचलित कर देती है। तो यदि इन विषई जीवों को उस महामाया द्वारा मोह हुआ तो-क्या आश्चर्य है । अतएव ये सब प्राणी आपकी उसी मोहनी माया से ठगाये हुये अपार संसार में विषय सुख को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं ।

दोहा-दिव्य धाम के दिव्य सुख, से वंचित सब लोग ।
अमित काल से बुद्धि में, बसे विषय अरु भोग ॥२१
यहि कारण से विषय में, भयौ प्रबल अनुराग ।
दिव्य स्वाद कैसे लहैं, विषय सकैं किमि त्याग ॥२२

अर्थ--हे प्राण प्यारे जू ! बहुत समय से यह प्राणी इस (दिव्य धाम के) अलौकिक सुख से वंचित हैं। इस कारण से वे प्रत्यक्ष विषय सुख को छोड़कर किस प्रकार उस अलौकिक सुख के लिये प्रयत्न करें ।

दोहा—भूतल बासिन को चहत, दिव्य स्वाद सुख दान।
तो हम दोनों भूमि पर, प्रगटैं रूप महान ॥ २३ ॥
दिव्य देह धरि भूमि पर, लीला करैं प्रसार।
देखि जीव कृत-कृत्य हो, सुख पाइहैं अपार ॥ २४ ॥

अर्थ—अतएव हे प्यारे ! यदि इन मृत्युलोक बासियों को दिव्य सुख प्रदान करना अभीष्ट है तो हम और आप दोनों को इसी दिव्य शरीर से पृथ्वी तल पर प्रगट होना परमावश्यक है।

दोहा—हिलमिल उनके साथ में, निज ऐश्वर्य छिपाय।
करि सुचरित यह दिव्य सुख, दीजिय पान कराय ॥ २५

* छन्द *

शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, आपको पाई।
त्यागि अनित्य विषय सुख करिहैं तब पदप्रीति सोहाई ॥ १ ॥
शब्दादिक, रस, रूप, गन्ध, में ये आशक्त सदाहीं।
हमनि सरिस रस,रूप,शब्द, प्रिय मिलै जगतमें नाहीं ॥ २ ॥

दोहा—याते हमनि स्वरूप लखि, विषय मोह मद त्याग।
पाइ दिव्य सुख मम चरण, करिहैं दृढ़ अनुराग ॥ २६
मृत्युलोक के जीव इमि, लहहिं दिव्य सुख भोग।
नाहिन आन उपाउ कोउ, विषय तजैं किमि लोग ॥ २७

अर्थ—अपने ऐश्वर्य को छिपाकर उन प्राकृत मनुष्यों में हिल-मिलकर मङ्गलमय चरित्रों के द्वारा, अपने दिव्य धाम

निवासियों का यह उत्तम आनन्द, इन मृत्युलोक निवासी जीवों को भी अवश्य ही प्रदान करना चाहिये ।

हमारे इन दिव्यधाम निवासियों को हम दोनों का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आदिक दिव्य विषय सुख की सहज प्राप्ति है । इसी कारण से अब हम दोनों मृत्युलोक में भी अपने इसी दिव्य रूप से प्रगट होंगे । तो वहाँ के प्राणी भी उपयुक्त दिव्य-विषय सुख को प्राप्त होकर, सहज ही तुक्ष विषय सुख को त्याग देंगे । क्योंकि जो प्राणी मधुर शब्द के विषय में आशक्त हैं, उन्हें हमारे जैसा मधुर शब्द और कहाँ मिलेगा । जो स्पर्श सुख में आशक्त हैं उन्हें ऐसा सुखद स्पर्श भी अनयत्र कहाँ मिलेगा । जो रूपाशक्त हैं, उन्हें भी हम दोनों जैसा रूप कहाँ मिलेगा । जो रसाशक्त हैं, उन्हें हमारे प्रसाद से बढ़कर मधुर और सरस वस्तु कहाँ मिलेगी । जो गंधाशक्त हैं, उन्हें भी हमारे और आपके श्री अंग की सुगन्ध से बढ़कर सुगन्ध और कहाँ मिलेगी । जो लीला देखने में आशक्त हैं, उन्हें हमारी जैसी सुखद मनोहारिणी लीला भी अनयत्र कहाँ मिलेगी । अतएव हे प्यारे ! हमारे और आपके भूतल पर पधारने से, वे तुक्ष विषयाशक्त जीव भी सहज ही में दिव्य सुख के भोक्ता बन जायेंगे ।

❀ श्रीरामोवाच ❀

दोहा- मेरे ही भय से सदा, पवन, इन्द्र, दिनराय ।
विधि, हरिहर, यम, काल, भू, मृत्यू हृदय डराय ॥२८
जिसको जो आयसु दई, नियमित कारज माहिं ।
आलस तजि निज काजको, निशिदिन सदा कराहिं ॥ २९

अर्थ--हे श्रीप्रिया जू ! मेरा भय मानकर ही सभी बड़े से बड़े शक्तिमान वायु-सूर्य, इन्द्र-अग्नि-मृत्यु-पृथ्वी-ब्रह्मा-विष्णु-महेशादिक आलस त्यागकर अपने-अपने नियमित कार्यों में लगे रहते हैं । जिसको जो कार्य करने को मैंने आदेश दिया है, उसमें वह अहर्निशि लगा रहताहै ।

दोहा-मच्छर से भयभीत नर, अल्प शक्ति अज्ञान ।
मेरो भय बिसराय के, मन में करत गुमान ॥३०॥
वेद, शास्त्र, मुनिजन, बचन, तजि बहु करत कुकर्म ।
विषय भोग आशक्त अति, मानत कर्म न धर्म ॥३१
चलत कुमारग पर सदा, पावत दुःख अपार ।
कर मीजत पछितात पुनि, हा हा करत पुकार ॥३२॥

अर्थ--किन्तु यह अल्प शक्तिमान मनुष्य, जिसे एक मच्छर से भी भय लगा रहता है, वह मेरा भय न मानकर मुझसे विमुख हो, वेद, शास्त्र, और किसी भी महान भाव की आज्ञा न मानकर केवल अपने मनमाने आचरण करते हुये जान बूझकर कुमार्गगामी हो रहे हैं ।

दोहा-खेलूँ इनके साथ नित, मेरे मन यह चाह ।
किन्तु न देखत मोहिं यह, चलत आपनी राह ॥३३॥
प्रतिछण यह अपराध मम, करत रहत दिन रैन ।
आपहि कहिये कवन विधि, ये सब पावैं चैन ॥३४॥

अर्थ--हे श्रीप्यारी जू! मेरी यह इच्छा है कि मैं इनके साथ-साथ खेलता रहूँ। परन्तु ये मेरी ओर देखते भी नहीं, और जान बूझ कर प्रतिक्षण मेरा अपराध किया करते हैं।

दोहा-मम प्रतिकूल करम सदा, करत रहत दिन रैन ।
परम अभागी हठ विबस, कैसे पावैं चैन ॥३५॥

अर्थ--हे श्रीप्रिया जू! जो जीव मुझे अप्रसन्न कराने वाले कर्मों को ही रात दिन करते रहते हैं। आपही कहिए कि उन मन्दभागियों को कैसे सुख हो सकता है।

❀ श्रीसीतोवाच ❀

श्लोक--बालानामपराधान् किं पश्यन्ति पितरः क्वचित् ।
मायया संवृतात्मानः कथं त्वां वीक्षितुं क्षमाः ॥८॥

दोहा--जिमि पितु मातु अबोध शिशु, दोषन देखत नाहिं ।
तिमि मायावृत जीवको, आपहु क्षमा कराहि ॥३६॥
इनके मन अरु बुद्धि पर, माया पटल विशेष ।
बिना हटाये किस तरह, सकहिं आपको देख ॥३७॥

उनमें नहिं सामर्थ यह, माया सकहि हटाय।
फिर उनको काहे प्रभो, दोष रहे बतलाय॥ ३८॥
माया बन्धन अति प्रबल, आपहिं सकत छुड़ाय।
जीवों में अकलंक यह, काहे रहे लगाय॥ ३९॥

अर्थ--हे प्यारे जू! क्या कोई माता पिता भी कभी अपने अबोध बालकों के अपराधों पर कभी भी दृष्टि डालते हैं। अर्थात् कभी नहीं। इसी तरह आप भी इन अबोध जीवों के अपराधों पर ध्यान न देने की कृपा कीजिये। इनके बुद्धि और नेत्रों पर माया का परदा पड़ा हुआ है। अस्तु उस माया का परदा हटाये बिना ये आपके दर्शन करने में किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं। क्योंकि आपकी प्रबल माया का परदा हटाने की सामर्थ्य भी इन बिचारे जीवों में नहीं है। उसको हटाना भी आपके ही द्वारा होगा। असमर्थ जीव माया का परदा कैसे हटा सकते हैं। तब ये जीव मेरी ओर देखते भी नहीं, ऐसा कहते हुये बेचारे इन जीवों को कलंक देना आपके लिए कैसे उचित हैं।

दोहा-पितु के लखि ऐश्वर्य को, बालक नहीं डराहिं।
जीव न डरते आपसे, तदपि अदोष सदाहिं॥४०॥
शिशु के टेढ़उ चरित लखि, मातु पिता सुख लेत।
करते प्यार सदा उन्हें, सपनेहुँ दोष न देत॥४१॥

करुणा वरुणालय सुहृद, सच्चे जग पितु मातु।
रुष्ट न होइय शिशुन पर, ये अबोध तव तात ॥४२॥

अर्थ--हे श्रीप्राणप्यारे जू! अपने माता पिता का महा
ऐश्वर्य देखकर भी बालक उनसे भय नहीं मानते
तो क्या वह बालक माता पिता के रोष के पात्र होते हैं
अर्थात् नहीं होते हैं। जिस प्रकार बालकों की सूधी
टेढ़ी सभी क्रीड़ाओं को देखकर उनके अनुरागी माता
पिता विशेष सुख ही मानते हैं। उसी प्रकार हे करुणा-
वरुणालय सच्चे सुहृद, जगतपिता, आप इन जीव-
रूपी बालकों के मनमाने सभी आचरणों पर रुष्ट न
होकर सुख ही मानिये।

दोहा--जीवों के अवगुण न लखि, उनकी अगति निहार।
तजिय निठुरता हे प्रभो, अपने हृदय विचार ॥४३॥

* छं० चौ० *

अवगुण देखि देखि जीवन के प्रवल निठुरता धारी।
सो बिसराय प्राण जीवन धन करिये कृपा अपारी ॥ ३ ॥
विश्व विमोहन मंगलमय वपु दिव्यरूप गुण धारी।
भूतल प्रगटि दिव्य सुख देकर कीजिय सबहिं सुखारी ॥४॥

अर्थ--हे श्रीजीवनधन जू! जीवों के अवगुणों पर दृष्टि
देकर केवल उनकी दुर्दशा को ही देखिये। और उन

अवगुणों के देखने से जो आपके हृदय में निठुरता आ रही है, उसे परित्याग करके अब करुणाभाव ही लाइये, इन पर कृपा करके दिव्यसुख प्रदान करनेके लिये अपने इसी विश्वविमोहन रूप, गुण, शील सौन्दर्य सम्पन्न दिव्य मंगलमय बिग्रह से मनुष्य लोक में प्रगट होने की इच्छा कीजिये।

❀ श्रीरामोवाच ❀

दोहा--जीवों पर करिके कृपा, यही दिव्य तन धार।
प्रगटौं यदि भूलोक में, अचरज होय अपार ॥४४॥

❀ छं० चौ० ❀

अज अचिन्त्य अनवद्य अनामय अचल अमल अबिनासी।
गुणगोतीत, अगोचर, अविगत, निर्विकार, सुखरासी॥
व्यापक, ब्रह्म, अनीह, अरूपम, अलख, चहूँश्रुति गायो।
सोइ मैं प्रगटौं कहे सकल जग वेदन मृषा बतायो॥

दोहा--वेद झूँठ यदि सिद्ध हों, तो अनर्थ हो जाय।
मैं प्रगटौं केहि भाँति से, कहिय उपाय बुझाय ॥४५॥

अर्थ--हे श्रीप्रिया जू। यदि इन जीवों पर कृपा करके दिव्य-सुख प्रदान करने के लिये हम और आप इसी अपने दिव्य स्वरूप से भूलोक में प्रगट होवें, तो अजन्मा,

अचिन्त्य, आदिक वेदोक्त सभी नाम झूठे हो जायेंगे और उनके झूठे होने से वेद भी झूठे सिद्ध हो जायेंगे

❀ श्रीसीतोवाच ❀

दोहा--वर्णन करि करि वेद नित, नेति नेति कहि देहिं।
याते सदा अदोष हैं, वेद झूठ नहिं होहिं ॥४६॥

अर्थ--हे श्रीप्राणबल्लभ जू! वेद हम दोनों के स्वरूप को वर्णन करते २ नेति नेति कह देते हैं। अर्थात् मैंने जैसा कहा है, वैसा ही नहीं है, बल्कि उससे परम बिलक्षण है। ऐसा कहकर वह प्रेम में डूब जाते हैं, अतएव प्रभु ऐसे ही हैं, ऐसा निश्चय न कर देने से वेद झूठा नहीं हो सकता है।

❀ श्रीरामोवाच ❀

दोहा--शरणागत रक्षण करन, मैंने दृढ़ ब्रत कीन।
प्रिये दोष मेरो कहा, जीव शरण नहिं लीन ॥४०॥

छन्द--शरणागत रक्षण की मैंने, प्रबल प्रतिज्ञा कीनी।
कहिय प्रिया क्या दोष हमारो, जीव शरण नहिं लीनी ॥
मोसे मिलन हेत शरणागत, धरै एक पग आगे।
रक्षा करूँ दौड़ जाऊँ मैं, कोटिन पग अनुरागे ॥

अर्थ--हे श्रीप्रिया जू ! शरणागत जीवों की रक्षा करने के लिये तो मैंने प्रबल प्रतिज्ञा हो कर रक्खी है, तथापि यदि वे मेरी शरण में ही न आवें, तो फिर मेरा क्या दोष है।

❀ श्रीसीतोवाच ❀

दोहा- चहत अपेक्षा आप तो, कवन दयालु उदार।
हे पितु हूँ मैं तव तनय, क्या शिशु कहत पुकार ॥४८॥

अर्थ--हे जीवनधन नाथ जू ! यदि आपके हृदय में यह अपेक्षा है कि जीव मेरी शरण में आवे, और कहे कि-हे नाथ ! मैं आपका हूँ, आप हमारी रक्षा कीजिये। ऐसी प्रार्थना करे। तब मैं उसे सभी प्राणियों से अभय करूँगा। भला विचारिये तो सही कि इस अपेक्षा में आपकी कौन सी दयालुता हुई, और इसमें उदारता भी क्या है। अर्थात् दयालुता तथा उदारता तब मानी जाती जब कि किसी भी प्राणी को दुखी देखकर उसके बिना कहे ही दुख दूर कर देते, जिस प्रकार भूख से पीड़ित किसी भी व्यक्ति को उसके बिना ही मागे भोजन देकर दुख दूर करने में ही उदारता समझी जाती है। इसके विपरीत दुखी प्राणी के अनुनय विनय से विवश होकर दुख दूर करने में न तो दयालुता ही सिद्ध होती है, न उदारता ही। अस्तु जीवों को हमारी और आपकी शरणमें बिना आये ही उन्हें पूर्ण सुखी कर देना हमारा और आपका

परम कर्त्तव्य है। एतदर्थ मृत्युलोक में इसी दिव्य रूपसे हमें और आपको प्रगट होना परम आवश्यक है। क्या कोई बालक भी अपने माता-पिता से ऐसा कहते हैं कि-हम आपके हैं, तब पिता माता उसका पालन पोषण करते हैं। इसलिये यदि वे मनुष्य आपसे--हे प्रभो मैं आपका हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये, ऐसा नहीं भी कहते हैं, तो भी पुत्रवत् न कहने के अपराध से यह उपेक्षा करनेके योग्य नहीं हैं। अर्थात् दया करने योग्य ही हैं।

दोहा—हम दोनों की प्राप्ति हित, कीन्हों तप अति घोर।
स्वायंभुवमनु अवध में, लसत नृपति शिरमौर ॥४६॥
भूतपूर्व कीन्हों सुतप, अवभय अवध भुआल।
पुत्र रूप देखन चहत, तुमको नयन विशाल ॥५०॥

अर्थ—हे श्रीप्राणवल्लभ जू! हमारी और आपकी प्राप्ति के लिये, जिन्होंने पूर्व में कितनी कठिन तपस्या की थी, वे स्वायम्भू मनु (ब्रह्माजी के मानस पुत्र) महाराज श्रीदशरथ नाम से इस समय श्रीअवध में उत्पन्न हुये हैं।

दोहा—शतरूपा हूने लियो, कौशल्या अवतार।
दशरथ संग विवाह भो, विलसत अवध मझार ॥५१॥

अर्थ--श्रीशतरूपा महारानी श्रीकौशल्या नाम से विख्यात हुई हैं। उनका विवाह भी श्रीदशरथ जी महाराज के

साथ ही हुआ है । इस समय वे दोनों प्राणी वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुके हैं ।

दोहा–हम दोनों ने उस समय, दिया उन्हें वरदान ।
उसे न अब बिसराइये, हे जीवनधन प्रान ॥५२॥
ब्रह्मादिक सब देवगण, निरखत पंथ तुम्हार ।
करके कृपा पधारिये, जीवन प्राण अधार ॥५३॥

अर्थ--हे प्यारे जू ! उन दोनों को पूर्व में हमलोग जो बरदान दे चुके हैं, उसे कैसे भुला रहे हैं । उसी बरदान की आशा में ब्रह्मादिक सब देवगण हमारे और आपके पृथ्वी तल पर आगमन होने की बाट देख रहे हैं ।

दोहा–दशरथ कौशल्या सुवन, आप बनिय सरकार ।
मैं विदेह नखभूमि ते, प्रगटौं प्राण अधार ॥ ५४ ॥
श्रीमिथिलेशहिं बाल सुख, देइहौं परम अनूप ।
करिशिशु चरित रसाल वर, धरिप्रिय मंजु स्वरूप ॥ ५५

अर्थ--हे श्रीप्राणप्रियतम जू ! आप श्र दशरथजी तथा श्रीकौशल्याजी को पुत्र भाव से प्राप्त होइये । तदन्तर मैं श्रीमिथिलेशजी महाराज के पूर्व जन्म की प्रार्थनानुसार उनकी यज्ञवेदी से पुत्री रूप में प्रगट होऊँगी ।

दोहा–हम दोउ चलि भूलोक में, धारैं मानव देह ।
प्रेम गंग प्रगटावहीं, दर्शावैं नव नेह ॥ ५६ ॥

अर्थ--हे श्रीहृदयरमण जू ! इस प्रकार हम और आप पृथ्वी तल पर प्रगट होकर प्राणियों को केवल आनन्द ही आनन्द प्रदान करने वाले चरित्रों को दिखावैं। और अपने सौहार्द्पूर्ण व्यवहारों से प्रेम की गंगा बहादें।

दोहा–प्रियतम जिस सुख के लिये, ब्रह्मादिक ललचाहिं।
श्रीमिथिला अरु अवध में, नित सोइ सुख बरसाहिं ॥५७

छंद–यह अभिलाष हमारे मन में, सुनहु प्राणधन प्यारे।
आप अवधपुर जाय बनें, श्रीदशरथ राजदुलारे ॥
मैं मिथिलेश यज्ञवेदी से, प्रगटौं बनि सुकुमारी।
शिशु अरु प्रौढ़ बिवाहादिक, लीलाकरि करौं सुखारी॥

अर्थ--हे श्रीहृदयहार जू ! ब्रह्मादिक देव भी जिन सुखों की प्राप्ति के लिये लालायित हैं, उन दिव्य सुखों की अखण्ड वर्षा श्रीमिथिलाजी और श्रीअयोध्याजी की भूमि पर भलीभाँति करनी चाहिये।

❀ श्रीरामोवाच ❀

श्लोक–धन्या तवानुकम्पेयं निरपेक्षा तवोचिता।
त्वामृते मयिनान्येषु कुतः स्यात्प्राणवल्लभे ॥ ४९ ॥

दोहा–अहह प्रिये तव कृपा को, धन्यवाद बहु बार।
बिन साधन निरपेक्ष ही, जीवों पर तव प्यार ॥५८॥

जब की मुझ में ही नहीं, ऐसी कृपा उदार ।
तब तुमको तजि हे प्रिये, को ऐसो रिझवार ॥५९॥

अर्थ--हे श्रीप्राणवल्लभाजू ! अहह आपकी इस अनुकम्पा (दया) को धन्यवाद है, जिस कृपा को जीवोंके किसी भी साधन की अपेक्षा (चाहना) नहीं है। यह कृपा आपके ही योग्य है, जबकि ऐसी कृपा आपको छोड़कर मुझमें ही नहीं है, तब और दूसरे किसी में भी कहाँ से आसकती है ।

श्लोक-कृपैकसाधनं श्रेयस्तव निर्हैतुकी प्रिये ।
देहिनामपि सर्वेषां तथैव परमागतिः ॥ १० ॥

दोहा-जीवों के कल्याण हित, मारग यह बलवान ।
निर्हैतुकि तुम्हरी कृपा, साधन एक प्रधान ॥ ६० ॥
सब जीवों की सब तरह, रक्षा करनी हार ।
प्रिय तव मृदुल स्वभाव पर, बार बार बलिहार ॥६१

अर्थ--हे श्रीहृदयेश्वरी जू ! प्राणिमात्र के कल्याण के लिये आपकी यह बिना कारण के हो अगार कृपा ही मुख्य साधन स्वरूपा तथा सभी प्राणियों के लिये सब प्रकार की सुरक्षा करने वाली है ।

श्लोक-सर्वतन्त्रस्वतन्त्रोऽपि सर्वथा ते वशीकृतः ।
अजेयो निर्जितः सम्यङ् मोहितो विश्वमोहनः ॥

दोहा–हौं स्वतन्त्र शासक सदा, वश करि सकै न कोय।
अजित न कोई जीत सक, कैसोहू भट होय ॥६२॥
बिन कारणहिं कृपालुता, तव लखि के मन मोर।
विश्व विमोहन मुग्ध हो, रहूँ सदा बश तोर ॥६३॥

छं०–हौं स्वतन्त्रशासक अजीत अति, जीत सकै नहिं कोई।
काहूके वश भयो न होऊँ, कैसो हू भट होई॥
बिन कारणहिं कृपा लखि तुम्हरी,विवशभयो मनमेरो
विश्वविमोहनमुग्ध भयेउअति,तनिहँसि मम दिशिहेरो

अर्थ--हे श्रीप्राणप्रियतमाजू! आज तक मैं न किसी के आधीन हुआ न होऊँगा, परन्तु आज आपने अपनी इस निर्हेतुकी कृपा के द्वारा मुझे सर्वथा अपने वशीभूत कर लिया है। अजेय को जीत लिया, मुझ विश्वविमोहन को सब प्रकार से मुग्ध कर लिया है।

दोहा–प्यारी जू तुमने कहा, मैं अब करिहौं सोइ।
दिव्य चरित भूलोक में, करौं दिव्य तन होइ॥६४॥
मैं प्रगटौं श्रीअवध में, बनि श्रीदशरथ लाल।
तुम प्रगटो मिथिलेश गृह, संग रँगीली बाल ॥६५॥
करि प्रिय दिव्य चरित्र शुचि, प्रीति रीति दिखलाय।
परमानँद देइहौं सबहिं, कृपा समुद्र डुबाय ॥६७॥

छंद चौ०–हे प्यारी जू कहा आपने मैं अब करिहौं सोई।
प्रगटौं दिव्य देह धरि भू पर चरित अलौकिक होई ॥
मैं तुम्हरी रुचि जोगवौं निशिदिन करौं चरित प्रियसोई
जेहि विधि होउ प्रसन्न छबीली तव मनमें सुख होई ॥

अर्थ--हे श्रीप्राणप्रियाजू अब जैसे आपने कहा वैसे ही होगा। अर्थात् हम अवश्य अपने इसी दिव्य स्वरूप से मृत्यु-लोक में प्रगट होंगे, क्योंकि मैं तो आपके मन के पीछे-पीछे चलने वाला हूँ। अस्तु अब हम और आप अपने परिकरों सहित श्रीदशरथजी महाराज तथा श्रीमिथिलेश जी महाराज दोनों के नगरों में पधारें।

❀ श्रीसाकेत सुषमा सम्पूर्ण ❀

❀ पंच संस्कार ❀

श्रीकिशोरीजी--हे अनन्त श्रीसंयुक्त करुणानिधान जू! आज आपसे प्रार्थना पूर्वक कुछ पूछने की कामना मेरे हृदय में हो रही है।

श्रीरामजी--हे श्रीप्राणप्रियाजू! आप तो साक्षात् कृपाकी खानि और विश्व का कल्याण करने वाली हैं, और मेरी परमादरणीय हैं, अस्तु आपको जो कुछ पूछना हो, निसंकोच पूछिये।

श्रीकिशोरीजी-हे श्रीजीवजीवनजू! आपने कृपा करके प्रकृति मण्डल के जीवों को अपने समान सब साज दे दिया है, तथापि वह सहज सुखों से बंचित क्यों रहते हैं।

श्रीरामजी-हे श्रीमिथिलेशनन्दिनी जू! मनुष्य पंच तत्वात्मक होने से पंच विकारों से पूर्ण रहता है। इसीलिए सदा दुखी रहता है। जैसे--अग्नि तत्व के विकार से सुन्दर रूप देखना, जल तत्व के विकार से रस चखना, वायु तत्व के विकार से कोमल वस्तु को स्पर्श करना, पृथ्वी तत्व के विकार से गन्ध लेना, आकाश तत्व के विकार से मधुर प्रिय शब्द सुनना, इन्हीं पंच विषयों के बश होकर सहज सुखों से वंचित रहता है!

श्रीकिशोरीजी-हे श्रीकरुणावरुणालय जू! इन पंच विकारों से बचने के लिए कौन सा उपाय है।

श्रीरामजी:-हे श्रीप्राणवल्लभा जू! सुनिये-मनुष्य को चाहिये कि-भजननिष्ठ सन्तोंकी शरण में जाकर पंच संस्कार ग्रहण करें, तो समस्त दुखों से छूटकर सहज सुखों को प्राप्त हो जायँ।

जैसे-पृथ्वी तत्व के विकार से शरीर जो अनेकों सम्बन्धों से बँधा है, उसे छुड़ाकर श्रीगुरुजी मेरे नामों में से किसी भी नाम के अन्त में दास लगाकर दूसरा नाम देतेहैं। यथा-रघुवीरदास-राघवदास इत्यादि यह पहला संस्कारहै, और जलतत्वके विकार से रस चखना जिसकी इन्द्री जिभ्या है, इसीलिये श्रीगुरुजी गले में कण्ठी बाँधदेते हैं। कि इसके भीतर

RC देंगाये

होकर रस ग्रहण हो। और तीसरा अग्नि तत्व के विकार से सुन्दर रूप देखना, जिसकी इन्द्री नेत्र हैं। इसीलिये ललाट पर तिलक और छाप देते हैं। चौथा आकाश तत्व के विकार से मधुर प्रिय शब्द सुनना, इसकी इन्द्री कान हैं, इसीलिये गुरुजी कान में मन्त्र देते हैं। पाँचवाँ वायु तत्व के विकार से स्पर्श करना है, इसकी इन्द्री त्वचा है, इसीलिये श्रीगुरुदेवजी हाथों के मूल में धनुषबाण की छाप देते हैं। तब मनुष्य मेरा रूप बनकर कृतार्थ हो जाता है।

❀ प्रेम माधुरी ❀

श्रीकिशोरीजी-हे श्रीप्राणनाथजू ! आज आप अत्यन्त प्रसन्न और प्रफुल्लित हो रहे हैं। सो इसका क्या कारणहै।

श्रीरामजी-हे श्रीप्रियाजू ! आज मैं अपने प्रेमियों का प्रेम देख-देखकर आनन्दित हो रहा हूँ।

श्रीकिशोरीजी-हे श्रीहृदयहार जू ! आपके प्रेमियों के प्रेम में क्या विशेषता है।

श्रीरामजी-हे श्रीप्रियाजू ! प्रेम में ऐसी मधुरता है, कि-वैसी मधुरता किसी में भी नहीं है। प्रेम में ऐसी शक्ति है, कि-मुझ त्रिलोकीनाथ को भी बाँध लेता है। प्रेम के समान संसार में कोई पदार्थ नहीं है। परन्तु प्रेम भी कई प्रकार का होता है। पहला प्रेम स्वार्थ सहित

होता है, दूसरा प्रेम व्यवहार सदृश्य होता है। तीसरा प्रेम निष्काम भावना वाला होता है, और चौथा प्रेम उन्माद भरा होता है।

श्रीकिशोरीजी-हे मनहरन श्रीप्राणवल्लभजू! आपने चार प्रकार का प्रेम बतलाया, सो मेरी समझ में नहीं आया। अस्तु आपसे निवेदन है कि आप चारों प्रकार के प्रेम का रहस्य अलग अलग ठीक से समझाइये।

श्रीरामजी-हे श्रीहृदयेश्वरीजू! पहला प्रेम स्वार्थ सहित होता है। जिसमें स्वार्थी जीव अपना ही स्वार्थ मुझसे चाहता है। और विपत्ति पड़ने पर कहता है कि—प्रभो, दौड़ो, बचाओ, धन दो, पुत्र दो, किन्तु जब मैं उसका दुख दूर कर देता हूँ और उसका सब मनोर्थ पूर्ण कर देता हूँ। तब वह मुझे भुलाकर आनन्द उड़ाने लगता है। बाद में धीरे-धीरे नास्तिक जैसा व्यवहार करने लगता है। ऐसा स्वार्थी प्रेमियों का प्रेम होता है। और दूसरा प्रेम व्यवहार सदृश्य होता है। वह व्यवहारी प्रेमी जितना मुझे अर्पण करता है, उससे कई गुना अधिक मुझसे चाहता है। वह मुझे पाँच का भोग लगाकर चाहता है कि—पाँच हजार की प्राप्ती मुझे हो जाय, हे प्राणवल्लभे! ऐसा प्रेमी व्यवहारिक कहा जाता है। और तीसरा

प्रेमी निष्काम भावना से मेरी पूजा करता है, किन्तु वह मुझसे कुछ भी चाहता नहीं है। वह नियम पूर्वक विधि विधान से सेवा करता है। यद्यपि उसका प्रेम शुद्ध होता है, फिर भी वह मुझे पूर्ण रूप से बश में नहीं करपाता है। और चौथा प्रेम उन्माद भरा होता है।

वह प्रेमी विधि-विधान भुलाकर हमारे विरह वेदना से व्यथित होकर रोता है, कभी मेरी झलक देखकर हँसने लगता है। कभी मुझे रिझाने के लिये मेरे गुण गा-गा कर नाचने लगता है। वह दूसरे के दिखाने के लिये ऐसा नहीं करता है। उसकी तो सभी चेष्टायें हमारे ही लिये होती हैं। इसलिये मुझे सुतीक्ष्ण का प्रेम बहुत प्यारा लगा। यद्यपि बहुत ही प्रेमियों ने मुझे बहुत सुन्दर सुन्दर पकवान पवाये, तथापि-प्रेमोन्मादिनी शबरी के सरस प्रिय मधुर बेरों में मुझे जो स्वाद मिला, सो अन्य कहीं नहीं मिला। इसलिये यह चौथा प्रेम ही सबसे श्रेष्ठ है। ऐसे प्रेमियों के लिये मैं अपना सर्वस्व समर्पण करके उनके पीछे-पीछे फिरता हूँ।

श्रीकिशोरीजी-हे श्रीराजिवलोचनजू ! आपने प्रेमोन्माद को ही सर्वश्रेष्ठ बताया है। ऐसी प्रेम दशा कैसे प्राप्त हो सकती है।

श्रीरामजी-हे श्रीप्राणेश्वरी जू ! ऐसी प्रेमोन्माद दशा तो आपके इन श्रीचरणकमलों की कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। जिस जीव ने आपके श्रीचरणों की शरण ले ली है। और जिस पर आपकी कृपादृष्टि होगई है, बस वही प्रेमी इस प्रेमोन्माद दशा को प्राप्त कर पाता है। अथवा आपके किसी अनन्य प्रेमी की कृपा हो जाय, तो भी जीव इस दशा को प्राप्त कर सकता है।

श्रीकिशोरीजी-हे मनरमनश्रीप्रीतमजू ! आप अत्यन्त मधुर वाणी से मेरा हृदय हरण कर रहे हैं। कृपा करके इतना और बताइये कि ऐसे प्रेमोन्माद की दशा वाला प्रेमी क्या आपको शीघ्र ही प्राप्त कर लता है। अथवा बिलम्ब से, क्योंकि ऐसी दशा ठहरती नहींहै।

श्रीरामजी-हे श्रीप्राणसंजीवनी जू ! ऐसी प्रेमोन्माद दशा जिसको प्राप्त होती है। वह मुझे शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। क्योंकि मैं अपनी अहैतुकी कृपा से उस परम प्रिय भक्त को सब विधानों से मुक्त करके अपने नित्य साकेत धाम में ले आता हूँ। और जो आपने कहा कि ऐसी दशा ठहरती नही है, सो वह छनिक प्रेम तरंग होती है, वह प्रेम की कच्ची दशा है। उसे प्रेमोन्माद नहींकहना चाहिये। क्योंकि—

दोहा—छनहिं चढ़े छन उतरे, सोतो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय॥

और हे प्यारी जू ! जो जीव खान पानादि संसारी मायिक अनित्य छनिक सुखों में ही भूले हुये है। वे लोग भी प्रेमियों के सतसंग में पड़कर छनिक प्रेम तरंग प्राप्त कर लेते हैं।

वही प्रेम दशा नहीं ठहरती है। कुछ दिनोंके बाद उतर जाती है। किन्तु सच्चे प्रेमोन्माद की दशा एकरस रहती है। इसलिये धीरे-धीरे मनकी बासनाओंका त्याग कर निर्मल बनावे, और सतसंग में बैठकर कीर्तन करे। मेरे मिलने की आशा से जो विरह बढ़ताहै, वही विरह आगे चलकर प्रेमोन्माद का रूप धारण कर लेता है। हे श्रीप्राणेश्वरी जू ! ऐसा प्रेमी मुझे प्राणसे भी अधिक प्रिय है। प्रेम ही सब प्राणियों के पुण्यपथ का द्वार है। प्रेम से ही जगत का होता सदा उपकार हैं।

जिस हृदय में प्रेम का उठता नहीं उद्‌गार है।
वह हृदय पत्थर सदृश जिसमें भरा नहिं प्यार है॥
प्रेम से ही विश्व का होता सदा निस्तार है।
इसलिये हे प्राणप्यारी प्रेम जगत अधार है॥

❀ परस्पर सम्बाद ❀

बाँकी वंक चितवनियाँ पर वलिहार प्यारे जू,
हो वलिहार प्यारे जू।
मृदु तर मन्द मुसुकनियाँ पर वलिहार प्यारी जू,
हो वलिहार प्यारी जू॥

प्यारे श्रीअवधेश दुलारे, हे मम जीवन प्राण अधारे।
नित नवनेह की फसनियाँ पर वलिहार प्यारे जू,
हो वलिहार प्यारे जू॥ बाँकी०॥

प्यारी श्रीमिथिलेशदुलारी, हे मम जीवन प्राण अधारी।
गस के लागी सरस लगनियाँ पर वलिहार प्यारी जू,
हो वलिहार प्यारी जू॥ मृदु०॥

रसिक दोउ नयन रसीले प्यारे, तीनों लोकसे लागत न्यारे।
तीर सम तिरछी तकनियाँ पर वलिहार प्यारे जू,
हो वलिहार प्यारे जू॥ बाँकी०॥

अरुणअधर बिम्बाफल सोहैं, ममनम शुक लखिलखि तरसोहैं
दमकत दाड़िम सी दशनियाँ पर वलिहार प्यारी जू,
हो वलिहार प्यारी जू॥ मृदु०॥

मेचक बाल अजब घुँघुराले, बरबस फाँसिलई सब बाले।
अलिसम मंजुल अलक हलनियाँ पर वलिहार प्यारे जू,
हो वलिहार प्यारे जू॥ बाँकी०॥

कारे केश सहज सुखसार, मानो रस शृँगार की धार ।
लोनी चोटी की गूथनियाँ पर वलिहार प्यारी जू,
हो वलिहार प्यारी जू ॥ मृदु० ॥
शिरपर क्रीट मुकुट शुभसोहत, कोटि प्रभाकर उपमामोहत ।
कानन कुण्डल की झमकनियाँ पर वलिहार प्यारे जू,
हो वलिहार प्यारे जू ॥ बाँकी० ॥
प्यारी शिर चन्द्रिका बिराजै, अगणित शशि की सुषमा लाजै
सुन्दर श्रवण पूर झलकनियाँ पर वलिहार प्यारी जू,
हो वलिहार प्यारी जू ॥ मृदु० ॥
पिय के भाल तिलक छवि छावन, प्रेमीजन मनमीन फसावन
रसमय मंजुल मधुर बचनियाँ पर वलिहार प्यारे जू,
हो वलिहार प्यारे जू ॥ बाँकी० ॥
प्यारी गल गल मोती राजै, उरबिच कलित कन्चुकी छाजै ।
चन्द्रहार की प्रिय झलकनियाँ पर वलिहार प्यारी जू,
हो वलिहार प्यारी जू ॥ मृदु० ॥
पियके भुजमें अंगद सोहत, अँगुरिन मुँदरी अति मनमोहत ।
करमें सुन्दर बाण कमनियाँ पर वलिहार प्यारे जू,
हो वलिहार प्यारे जू ॥ बाँकी० ॥
प्रियाकी कटिमें किंकिणि सोहत, रुनझुन शब्द सुनतमनमोहत
अति प्रिय पायन की पैजनियाँ पर वलिहार प्यारी जू,
हो वलिहार प्यारी जू ॥ मृदु० ॥

प्रीतमचरण कमलप्रिय पावन, सुरनर मुनिमन मधुप लुभावन
नूपुर नवल मधुर बाजनियाँ पर वलिहार प्यारे जू,
हो वलिहार प्यारे जू ॥ बाँकी० ॥

❋ भक्त वात्सल्य ❋

मित्र मन मानस में पाकर सनेह नीर,
कमल समान सदा फूले हैं औ फूलेंगे।
चक्रवर्ती ताज क्या तीन लोक राजसुख,
प्रेम के मुकाबले न तूले हैं न तूलेंगे ॥
बिन्दुकवि अनोखे चोखे अपने भोले भक्तोंके,
टेढ़े सूधे बचन कबूले हैं कबूलेंगे।
कार बार जग के हजार बार तजे किन्तु,
प्रेमियों के प्यार को न भूले हैं न भूलेंगे ॥

व्यापक हूँ ठौर ठौर चेतन अचेत में,
जगत के प्रकाश का प्रकाशक कहाता हूँ।
नेति नेति गाते वेद भेद नहिं पाते कछु,
मुनियों के ध्यान में कबहूँ नहिं आता हूँ॥
रचना अलौकिक दिखाता नवीन सब,
माया महान भ्रू इसारे से नचाता हूँ
किन्तु प्रेमियों से कुछ चाल नहिं चलती,
जिस रूपमें नचाते वही रूप बन जाता हूँ।

(१) पद-मैं तो प्रेम को पुजारी नहिं चाहौं कछु और।
पाँवर कुटिल अधम अति खलहू, जिनको नहिं कहुँ ठौर ॥
सोउ सुमिरै भरि भाव हिये ते, तहाँ जाउँ मैं दौर।
प्रतिपालूँ नहिं छाड़ूँ तिनको, जो आवै मम पौर ॥मैं०॥

(२) पद-मैं सर्वदा भक्त हितकारी।
जो जेहि भाव सहित मोहिं सुमिरै,
तेहि को तेहि विधि करौं सुखारी ॥
करौं सम्हार सदा मैं निजकर, अपने पनको टारी।
भावभरे भक्तनके ऊपर हौं सतत बलिहारी ॥

(३) पद—भक्त हमारे नयनन तारे।
जोगवत रहौं सदा उनकी रुचि, जिमि जननी अपने सुतवारे॥
पूरण करौं सदा जनको व्रत, अपने व्रतहिं निवारे।
वे न चहैं जगमें कछु मोहि तजि, मैं उनपर निज तनमन वारे

(४) पद—मैं भक्तन पर सर्वस वारौं।
संकट परै जहाँ मम जनपर, अति आतुर हो स्वकर उबारौं।
पुरवौं सदा प्रतिज्ञा जनकी, भले आपने व्रत को टारौं।
पूरण करौं सदा जनकी रुचि, यह व्रत दृढ़ करि धारौं ॥

श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः

श्लोक-अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ ६३ ॥
नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥६४॥

अर्थ—मैं भक्तों के पराधीन हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। जिन्होंने मुझे ही अपनी परमगति मानकर सभी का त्याग कर दिया है। ऐसे परम प्रिय साधुओं ने अपनी भक्ति के प्रभाव से मेरे हृदय पर अपना पूर्ण अधिकार जमालिया है। वे भक्त मुझे परम प्रिय हैं।

मैं अपने परम प्रिय उन भक्त साधुओं के समक्ष में अपने को, और अपनी परम प्रिय श्रीजी को भी तुच्छ मानता हूँ।

श्लोक-ये दारागारपुत्राप्तान प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥६५
मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ।
वशी कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥६६

अर्थ—जो भक्त स्त्री गृह पुत्र परिवार और सबसे बढ़कर अपने प्रिय प्राण, इन सबको त्यागकर तथा धन ऐश्वर्यादिका

लोभ छोड़कर मेरी शरण में प्राप्त होगये हैं। उनके समान मुझे और कोई प्रिय नहीं है।

चौपाई—

अनुजराज सम्पति वैदेही। देह गेह परिवार सनेही ॥१॥
सब मम प्रियनहिंतुमहिंसमाना। मृषा न कहौंमोर यहबाना॥

अर्थ--जिन साधुओं का हृदय मुझमें लगा हुआ है, उनको भला मैं कैसे भुला सकता हूँ। वे समदर्शी साधुजन अपनी शुद्धभक्ति से मुझे उसी प्रकार अपने बश में कर लेते हैं, जैसे अपने सज्जन पति को पतिव्रता स्त्री अपने वश में कर लेती है।

श्लोक–मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादि चतुष्टयम्।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम् ॥६७
साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥६८॥

अर्थ--मेरी सेवा करने पर, उनको सालोक्य-सामीप्य-सारूप्य और सायुज्यादिक चारों मुक्तियाँ भी बिना चाहे ही प्राप्त हो जाती हैं। पर वे मेरी सेवा नहीं छोड़ते उसी में उनकी इच्छा पूर्ण रहती है। कालान्तर में नष्ट हो जाने वाले स्वर्गादि लोकों की कौन कहे, वे मुक्ति भी नहीं चाहते हैं।

साधुजन मेरे हृदय हैं, और मैं उनका हृदय हूँ। वे मुझे छोड़कर और किसी को नहीं जानते हैं, इसलिये मैं भी उनके अतिरिक्त और किसी को नहीं जानता हूँ। साधुजनों पर जो तेज का प्रयोग करता है, उसमें उन्हीं का अनिष्ट होताहै, साधुओंका कुछभी नहीं बिगड़ताहै।

पद—मैं निज भक्तन के गुण गाऊँ।
भक्त हमारे प्राण जिअनधन, भक्तन सँग सुख पाऊँ।
मेरे भक्त जात हैं जहँ जहँ, तहँ तहँ सँग सिधाऊँ॥
जहाँ बिठावैं तहँ मैं बैठूँ, वेचैं तो बिक जाऊँ।
भक्तन दर्शन करि सुख पाऊँ, भक्तन बिन अकुलाऊँ।
भक्तनके सब कारज सारूँ, नित्यधाम सो आऊँ॥मैं०

पद—भक्त हैं मेरे जीवन प्रान।
जब जब भीर पड़े भक्तन पर, धरत हमारो ध्यान।
तब तब दौरि करौं मैं रक्षा, त्यागि खान अरु पान॥
हम भक्तन के भक्त हमारे, करत सदा सनमान।
तिनके हित अवतार लेतहौं, भूमण्डल पर आन॥भ०

❀ भक्तों का ध्यान ❀

हम हैं भक्तों की आँखों में, अरु भक्त हमारी आँखों में।
पलभर न पलक से दूर करूँ, यह सिफत हमारी आँखोंमें॥
हमको जो भजै हम ताहि भजैं नहिं जाति कुजातिका भेदकरें
जो कहें सो करौं न टरौं कबहूँ, रहे जगत हमारी आँखोंमें॥
अपने प्रण को पलमें टारूँ, नहिं भक्त के प्रणको टलनेदूँ।
भक्तों की सूरति झूलि रही, हरवक्त हमारी आँखों में॥
वैकुण्ठपुरी नहि बास करूँ, नहिं योगिनके मन बास करूँ।
हरदम भक्तों के पास रहूँ यह शक्ति हमारी आँखों में॥
जो बेचें तो बिक जाऊँ मैं, जो काम कहें कर लाऊँ मैं।
जो मागें तो सर्वस दे दूँ, यह युक्ति हमारी आँखों में॥

पद—मैं निज भक्तन हाथ बिकाऊँ।
आठों याम हृदय में राखौं, पलक नहीं बिसराऊँ।
कल न परत बैकुण्ठ बसत मोहिं, योगिन मन न समाऊँ
जहँ मम भक्त प्रेम युत गावैं, तहाँ बसत सुख पाऊँ॥
टारूँ अपने बचन भक्त लगि, तिनके बचन निभाऊँ।
ऊँच नीच सब काम भक्त के, निजकर सकल बनाऊँ॥
पग धोऊँ रथ हाकूँ माजूँ बासन छानि छवाऊँ॥मैं०॥
मागूँ नहीं दाम कछु तिनते, नहिं कछु तिनहिं सताऊँ।
प्रेम सहित जल पत्र पुष्प फल, जो देवैं सो खाऊँ॥मैं०॥

निज सर्वस भक्तन को सौंपूँ, अपनो सत्व भुलाऊँ।
भक्त कहैं सोइ करौं निरन्तर, बेचैं तो बिक जाऊँ ॥मैं०॥

दोहा—भक्त हमारे उर बसत, हम भक्तन हिय माहिं।
नित अभिन्न तहुँ भिन्नबनि, लीला ललित कराहिं ॥१
मुझको तजि वे जगत में, औरहिं जानत नाहिं।
भक्ति भाव भूषित हृदय, ध्यावत मम पद काहिं ॥२
तथा हमहुँ अति प्रेम से, करत उन्हीं को ध्यान।
भक्तन पद रज शीश धरि, पाऊँ मोद महान ॥३॥
मुझ बिन भक्त न रहि सकत, मैं तिन बिना अधीर।
अति व्याकुल बिलपत रहैं, चैन न लहत शरीर ॥४॥
यथा हमारे नाम की, माला सुमिरत भक्त।
तथा तिनहिं सुमिरन करौं, मैं बनि अति आशक्त ॥५

छन्द—हमरे विषम वियोग भक्त जिमि अति दुख पावत।
मेरे गुणगण चरित गाय सुनि धीरज आवत ॥१॥
मेरे शील स्वभाव सुमिरि मन मोद समाई।
नृत्यत हिय उमगाय देह की सुरति भुलाई ॥२॥
तैसेहिं भक्त वियोग हमहुँ दुख लहत अपारा।
करि करि उनकी सुरति उठत हिय बहु उद्गारा ॥३
जब देखौं प्रिय भक्त हृदय से अति उमगाई।
भेटूँ कण्ठ लगाय जाउँ सब व्यथा भुलाई ॥ ४॥

❀ परस्पर सम्बाद ❀ 6

श्रीकिशोरीजी--हे श्रीराजिवलोचनजू! आपकी बिकराल माया से जीव किस प्रकार मुक्त हो सकता है।

श्रीरामजी-हे श्रीहृदयानन्दवर्धनी जू! आपके इस कोमल शील एवं स्वभाव की वलिहारी है, जिसमें जीव मात्र के लिये सहज करुणा का समुद्र समाहित है। हे प्राण-वल्लभे! निसन्देह मेरी यह माया अत्यन्त दुस्तर है। फिर भी जो जीव कर्तृत्वाऽभिमान को छोड़कर, सम्पूर्ण रूपसे मुझे ही आत्मसमर्पण कर, मेरी प्रपत्ति को स्वीकार कर लेते हैं। उन्हें मेरी यह माया व्याप्त नहीं होती है। वे इस प्रकार भवसिन्धु में रहते हुये भी, विषममायाजाल में कभी भी नहीं फसते हैं। हे प्रियाजू! सुनिये—

छंद—त्रिगुणमयी अति कठिन विषम मेरी यह माया।
साधन करि सब थके जीव कोइ पार न पाया ॥१॥
कर्तृत्वाअभिमान छोड़ि मम शरण जो आवै।
आत्म समर्पण करै दीन बनि मम पद ध्यावै ॥२॥
मेरी कृपा प्रसाद ताहि व्यापै नहिं माया।
भजन भावना माहिं होति अनुकूल सहाया ॥३॥
यद्यपि भवनिधि अगम पैरि कोइ पार न पावत।
मम आश्रित जनकाहिं धेनुपद सदृश जनावत ॥४॥

हे प्राणप्रियतमे ! इस विषयमें मैं आपको एक मनोरंजक आख्यान सुनाता हूँ, उसे आप श्रवण कीजिये। किसी एक सरोवर में बहुत से जलजन्तु तथा मछलियाँ निवास करती थी, उसमें बड़े बड़े मत्स तथा कच्छप भी रहते थे। उसी सरोवर में प्रतिदिन एक केवट अपना विशाल जाल डालकर मछलियाँ फसाया करता था। वह केवट अपनी झोली में कुछ अन्न लिये रहता था। उस सरोवर में एक मुठ्ठी अन्न फेंककर तुरन्त अपना विशाल जाल फेंक देता था। इसी क्रम में बड़े बड़े एवं चचल मत्सों को भी वह केवट फसाया करता था। किन्तु वहीं एक विचित्रता यह थी कि--ज्यों ही वह केवट अपनी मुट्ठी में अन्न लेकर छीटने को उद्यत हो, तभी कुछ मछलियाँ, दीन भाव से उसके चरणों के समीप पानी में आकर इकट्ठी हो जायँ। इस प्रकार एक तो वे उस जाल से भी बचजाती थीं, और दूसरे मुट्ठी से गिरे हुये अन्न के द्वारा उन्हें भोजन भी प्राप्त हो जाता था। हे प्राणप्रिये इसी प्रकार--

परम अगाध प्राणि वर्ग से प्रपूर्ण प्रिये,
सुन्दर सरोवर यह समस्त संसार है।
सृजन संरक्षण संहार ये त्रिरूप धरे,
केवट की क्रीड़ा और अनुपम विहार है॥
माया ही जाल विकराल है किशोर बड़ा,
मीन यह चराचर जीव बृन्द जो अपार है।
पौरुष दिखाकर कोई बचता न देखा गया,
शरणागत जनों का शरण्य पर भार है॥

हे श्रीराजकिशोरी जू! इस प्रकार यदि यह जीव संसार की अहंता, ममता एवं आशक्ति का परित्याग करके, मुझ सर्व शक्तिमान की शरणागति ग्रहण करले, तो यह जीव सर्वदा आनन्द सागर में मज्जन करता रहे। फिर उसके द्वारा यदि कुछ अनुचित कर्म भी बन जायँ। तो भी मैं उनपर ध्यान नहीं देता। मैं ही क्यों, कोई भी शरण्य अपने शरणागत की सर्वदा रक्षा करता है। हे श्रीप्रियाजू!

दोहा—जो जाकी शरणन रहै, ताको तेहि की लाज।
मीनधार सन्मुख चढ़ै, बहे जात गजराज॥१॥

वार्ता—बड़े बड़े विशाल काय पशु हाथी इत्यादि जिस प्रबल धारा में वह जाते हैं। आप देखिये, दीन मछली उसी धार में उल्टी ऊपर चढ़ जाती है, यह जीव अपने देहाभिमान रूपाभिमान, पाण्डित्याभिमान, प्रभृति अनेक अहं वृत्तियों से अपने आपको आच्छादित किये हैं। उसके नित्य के हितैसी सर्वदा उसके साथ रहने वाले मुझ सहज सुहृद को वह कल्पना का विषय मानता है। इसीसे दुखित रहता है। अन्यथा मेरा तो प्राणिमात्र के लिये ही प्रतिज्ञा है।

श्लोक—सकृत्देव प्रपन्नाय, त्वास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो, ददाम्येतद् व्रतं मम्॥१॥

❋ श्रीप्रिया जू का गान ❋

पद–जीवन प्राण अधार रसिकवर ।

रसिक रँगीले गुण गर्वीले, नृपसुत सब सुखसार ।
मन्द हँसनि चितवनि मृदुबोलनि, सुख सुषमा आगार ॥
मदरस छके नयन अरुणारे, मन चित चोरनहार ।
नख सिख रूप अनूप मनोहर, लजत कोटि शतमार ॥
अकथ अनाम अरूप अगोचर, भयो सोई गलहार ।
हे गुणशील स्वरूप उजागर, रहौं सदा बलिहार ॥

❋ श्रीप्रीतम जू का गान ❋

पद–तव छवि पर वलिहार प्रिया जू ।

मेरी जोवनमूरि सदातुम, बनीरहो गलहार प्रियाजू ॥
बंक भृकुटि चितवनि मदमाती, मम जीवन आधार प्रियाजू
बिहँसनि बोलनि कान्तिदशनकी, ममसन मोहनहार प्रियाजू
सुरनिठुरनि क्रीड़ा बिहारलखि, लाजत रती अपार प्रियाजू
रसिकजनन को रसप्रदायिनी, मम सर्वस सुखसार प्रियाजू
हे गुणशील स्वरूप उजागरि, चाहौं प्यार तुम्हार प्रियाजू ॥

❋ प्रिया जू का गान ❋

पद–फसिगय नयन हमारे, ललनके ललित बदन पै ।
जैसे मधुप सरोज परागे, शशिमें ज्यों चकोर अनुरागे ।
त्यों मुख निरखि सुखारे ॥ ललन० ॥

RC छूट्टी

नवकोमल कलकमल कपोले, अधिक अरुण मृदुअधर अमोले
अटके टरत न टारे ॥ ललन० ॥
विमलदशन द्युति आभानीकी, दाड़िम कुन्दकली छविफीकी,
धीर न धरत निहारे ॥ ललन० ॥
कम्बुग्रीव छविसींव झुकाये, चारु चिबुक चित लेत चुराये,
नक मौलिक हलकारे ॥ ललन० ॥
माथेमौर मौर बनि ढलकनि, श्रवणसुभग कुण्डलकी झलकनि
भूषण विविध सँवारे ॥ ललन० ॥
ललित तिलक विच लघुमसिटीको, लेत छीनि हियरो सबहीको
कच मेचक घुँघुरारे ॥ ललन० ॥
नृपकिशोर मुखछवि सुख न्यारो, करतपान रसमन मतवारो
सब सकोच करि न्यारो ॥ लल० ॥

❋ श्रीप्राणवल्लभ जू का गान ❋

रसियाः-मेरीप्राण सजीवन मूरि लाड़िली सिय सुकुमारीहै।
टेकः—सियसुकुमारी है मोहिं प्राणहुँ तें प्यारी है ॥
सुन्दर गौर सरूप सोहावन, भूषण बसन परम मन भावन,
कोटि चन्द्र लाजत लखि आनन।
ललित भाल वर तिलक लसत पावत छवि भारी है ॥मेरी०

मनहर विमल सुमाग सुधारी, भरी सिंदूर परम छवि कारी,

गुथे मुक्त लरसुमन अपारी ।

नागिनि जिमि लहरात पीठपर वेनी कारी है ।। मेरी० २ ।।

अमल कपोलनकी छवि न्यारी, अधरनपर छाई अरुणारी,

नाशामणि हलकनि अति प्यारी ।

शिर ऊपर चन्द्रिका कोटिशत शशि उजियारी है ।।मेरी०।।

कानन श्रवण पूर मनहारी, अमल दशन दाड़िम अनुहारी,

शुक समान नाशिका निहारी ।

मृग खन्जन अरु मीन लजावन दृग कजरारी हैं ।।मेरी०।।

सुन्दर ग्रीव विभूषण धारे, कर चूरीं मुद्रिका सम्हारे,

कंकण किंकिणि शब्द उचारे।

स्वर्ण रत्न मणि मुक्तन की उरमाला धारी हैं ।। मेरी० ।।

करतल मेहदी की छविछाई, चरण महावर की अरुणाई,

नख मणि चन्द्र छटा छहराई ।

हे गुणशील सिन्धु लखि तव छवि तन मन वारी है ।।मे०।

पुनः—प्यारी मुखचन्द्र चकोरी मेरे नयना ।

पलक न लगत पलक बिन देखे,भूलिगये गति पलहुँ लगैना

पानकरत मकरन्द रूपरस, अति अतृप्त कहुँ तृप्ति लहे ना ।

अरवरात मिलिको निशिदिन,मिलेइरहत मानो कबहुँ मिलेना

अतिआरत अनुरागी निरखत, बिनालखे जिय चैन परै ना।
भगवत रसिक रसिक की बातैं, रसिक बिना कोइ समुझि
सकै ना ॥

श्रीकिशोरीजी द्वारा—

❀ श्रीमिथिला धाम वर्णन ❀

मेरो मिथिलापुर बैकुण्ठ तिलक त्रिभुवन उजियारो है।
त्रिभुवन उजियारो है प्राणधन जगते न्यारो है ॥
जन्मभूमि ममपुरी सोहावनि, सुमिरत उर अनुराग बढ़ावनि
त्रिविधिताप भवदाप नशावनि, रसकी खानि रसिक जन
जीवन। गायमाय यश थकेउ शेष विधि लह्यो न पारो है ।।मे०
रसकी मूरि धूरि या पुर की, मेटति अखिल ताप जन उरकी,
सेव्या सकल मुनिन की सुर की, आदि स्रोत अनुराग सुधुर
की। त्रण पादप अरु बिहँग बनि बसत सुर परिवारो है
॥ मेरो० २ ॥ कीन्हीं अमल विमल जहँ लीला, मङ्गल
मई मोद रस शीला, वहत त्रिविधि वर वायु रँगीला, ठौर
ठौर अति रम्य रसीला। मरकत भवन सुवर्ण विपिन जग-
मोहन हारो है ॥ मेरो० ३ ॥ प्रेम तरंगिनि कमला विमला,
उठत हिलोरें उज्वल अमला, महल महल में छुटत शशि-
कला, भनै रुचिरता अहह को भला। निरखि रुचिरता
चकित भयो जहँ सिरजन हारो है ॥ मेरो० ४ ॥ ज्ञान

शिरोमणि दाऊ मेरे, सिखत ज्ञान मुनि जन तिन नेरे, मिलत न तुल्य जगत में हेरे, शुक सनकादि शिष्य जिन केरे। अलख अनादि ब्रह्म हू जाके पहुँचो द्वारो है। मेरो० ५ प्रेम मूर्ति सब बन्धु हमारे, रूप, शील, गुण, के उजियारे, त्रण त्रण मोहिं यहाँ के प्यारे, पशु पत्ती हू जगते न्यारे। कण कण में यह दिव्य पुरी से प्रेम हमारो है ।। मेरो० ६।। रसिकराय को नाथ बनायो, दिव्य प्रेम को पाठ पढ़ायो, बार बार बहु भाँति छकायो, रासया जहँ नाच्यो अरु गायो। दास किशोर त्रिशूल पाणि शिव पुर रखवारो है ।। मेरो० ७ ।।

श्रीरामजी महाराज के द्वारा—

❁ श्रीअवध धाम वर्णन ❁ 5

मेरो अवध धाम ब्रह्माण्ड मुकुट मणि मङ्गलकारी है।
मङ्गलकारी है प्रिया जू मङ्गलकारी है ॥
ललित ललित जहँ नित नइ लीला,
मुनि जन मनन विमोहन शीला,
बरसे नित नव नेह रसीला,
गावत शुक पिक गान रँगीला।
कंचन भवन प्रमोद विपिन की शोभा न्यारी है ।।मेरो०१।।
कुन्ज कुन्ज आनन्द अपारा, निर्मल जल सरयू की धारा,

घर घर भक्ति भरे भण्डारा, कोउ न पूछै मुक्ति का द्वारा।
— द्वार पाल हनुमन्तलाल सन्तन हितकारी हैं ॥ मेरो० २ ॥
केलि कलित लखि आनन्द मूला, बरसें सुरगण सुरतरु फूला,
नित्य बसन्त पवन अनुकूला, जनकलली जहँ झूलैं झूला।
— कोटि जन्म तप किये होय दर्शन अधिकारी है ॥ मेरो० ३ ॥
नित गलियन में धूम मचाऊँ, होली माहिं रंग रस छाऊँ,
श्रावण में झूलन सुख पाऊँ, शरद समय रस रास रचाऊँ।
सखन संग मृगया वन खेलूँ बनू शिकारी है ॥ मेरो० ४ ॥
परम सनेही मम पित माता, लछमण भरत शत्रुहन भ्राता,
केवट सरिस [illegible], [illegible] से हहनाता।
[illegible] धन अरु [illegible] [illegible] हमारी है ॥ मेरो० ५ ॥

❋ श्रीमिथिला धाम वर्णन ❋

मेरी सुन्दर मिथिला पुरी सकल लोकन ते न्यारी है।
सकल लोकन ते न्यारी है प्राणधन जग उजियारी है ॥
मेरी जन्मभूमि सुखकारी, महिमा वरणी वेदन भारी,
अतिप्रिय मोहिं नगर नरनारी, जिनको वन्दत विधि त्रिपुरारी।
कण कण में है दिव्य ज्योति निरखत अधिकारी हैं॥ मे० १ ॥
कमला बिमला सरित सोहाई, अमित सरोवर छवि मन भाई,
प्रफुलित कमल पराग उड़ाई, जहँ बन उपबन अरु अँबराई।
गुंजत खग गण रंग रंग के मुनि मन हारी हैं ॥ मेरी० २ ॥

मेरे पिता जनक योगीश्वर,मुनि जन जिनहिं बनावत गुरुवर,
माता रानि सुनयना सुखकर, प्रेम मूर्ति मम भ्रात मनोहर।
सुमिरत जिनकी प्रीति जाऊँ मैं सुरति बिसारी है। मे०३॥
मेरी सखी सहेली प्यारी, जिनकी महिमा जग उजियारी,
पूजत जिनहिं सकल सुर नारी, मेरे सँग की खेलन हारी।
प्राणन हूँ ते मोहिं परम प्रिय सखी हमारी हैं॥ मेरी० ४॥
जहँ मैं शिशु विनोद बहु कीने, फुलवारी के चरित नवीने,
प्यारे जहँ आये रस भीने, धनुष तोरि जयमाला लीने।
कोहवर में जहँ सखिय नचाये अवध विहारी हैं॥मे०५॥
[illegible] गेट [illegible] गावैं
मिथिला की महिमा [illegible] जयराम देव गु[illegible]
[illegible]ारद पार न [illegible]
नारद [illegible] लइ जाउँ तापर वलिहारी है॥ मेरी० ६॥
[illegible]ला नारै
[illegible]

भक्तमाल

श्री किशोरी जीः-हे श्रीप्राणनाथ जू! आप अत्यन्त प्रेम के सागर हैं। आप अपने प्रेमी भक्तों के लिये कुछ भी रहस्य गुप्त नहीं रखते हैं, इसका क्या कारण है।

श्रीरामजीः—हे श्रीप्राणप्रिया जू! आपकी मधुर प्रेम सुधा बरसाने वाली वाणी को सुनकर, मुझे बड़ा ही आनन्द प्राप्त होता है। यद्यपि आप सब कुछ जानती ही हैं! तथापि प्रेमियों को आनन्द देने के लिये,

लीला पूर्वक मुझसे पूछ रही हैं। भला बताइये तो, जो भक्तजन अपना सर्वस्व त्यागकर, सदा हमारा ही चिन्तवन करते रहते हैं, मैं उनको कैसे भूल सकता हूँ। मेरा तो यह सहज स्वभाव ही है, कि–जो मुझे जिस भाव से भजता है, मैं भी उसे उसी प्रकार भजता हूँ। मैं तो केवल भाव का भूखा हूँ।

❀ पद ❀

भाव का भूखा हूँ मैं, तो भाव ही बस सार है।
भाव से मुझको भजे, तो भव से बेड़ा पार है ॥१॥
अन्न-धन अरु वस्त्र भूषण, कुछ न मुझको चाहिये।
आपही हो जाय मेरा, पूर्ण यह सतकार है ॥२॥
भाव बिन सूनी पुकारें, मैं कभी सुनाता नहीं।
भाव पूरित टेर ही, करती मुझे लाचार है ॥३॥
भाव बिन सब कुछ दे डाले, मैं कभी लेता नहीं।
भाव से एक फूल भी दे, तो मुझे स्वीकार है ॥४॥
जो हमी में भाव रखकर, लेते हैं मेरी शरण।
उनके अरु मेरे हृदय का, एक रहता तार है ॥५॥
भाव जिस जन में नहीं, उसकी न कुछ चिन्ता मुझे।
भाव वाले भक्त का भर पूर मुझपर भार है ॥६॥
बाँध लेते हैं मुझे, यों भक्त जन जंजीर में।
इस लिये इस भूमि पर होता मेरा अवतार है ॥७॥

श्रीकिशोरीजीः—हे श्रीप्रियतम जू! समस्त संसार तो आपका भजन करता है, तो फिर आप भक्तों को क्यों भजते हैं। कहिये तो, भला आपको भजन करने की क्या आवश्यकता है।

श्रीरामजीः—हे श्रीमिथिलेशनन्दिनी जू! भक्तों का भजन मैं क्यों और किस लिये करता हूँ, सो सुनिये! जब मेरा भक्त संसार को भूलकर, मुझको पुकारता है, तब मुझसे नहीं रहा जाता। नित्य धाम साकेत से भी अधिक, भक्तों के भाव भरे हृदय में रहना मुझे अच्छा लगता है। भक्त जब प्रेमोन्माद में भरकर, कीर्तन करता है, तब मैं वहाँ जाकर, नृत्य करने लगता हूँ। भक्त जब चलता है, तब मैं उसकी रक्षा करने के लिये, उसके पीछे पीछे चलता हूँ। भक्त जब श्रमित हो जाता है, तब मैं प्रेमानन्द की धारा बहाकर, उसकी थकावट को दूर करता हूँ। भक्त जब भाव विभोर होकर विकल हो जाता है, तब मैं उसके भाव में प्रत्यक्ष प्रगट होकर, मीठी मीठी बातें सुनाकर, प्रसन्न करता हूँ। भक्त जब धीरज छोड़ देता है, तब उसे धीरज बँधाता हूँ। भक्त जब अत्यन्त दुखी होता है, तब मैं प्रत्यक्ष प्रगट होकर आलिंगन करता हूँ। गोद में बिठाकर मुख चूम २ कर, दुलार करता हूँ। भक्त जब मेरे बिना नहीं रह सकता है, तब मैं भी भक्त के बिना नहीं रह सकता हूँ।

श्रीकिशोरीजीः—हे श्रीहृदयहार जू ! आपके बचनामृत की मधुरता, मेरे मनको मोद बढ़ाती है। आप भक्तों के लिये ही भूमिपर बारम्बार अवतार लेते हैं, परन्तु आप स्वतन्त्र सर्वेश्वर होते हुये भी इस तरह भक्तों के बस में हो जाते हैं। भला इसको लोग क्या समझेंगे।

श्रीरामजीः—हे श्रीमैथिली जू ! संसार में प्रेम करने वालों से, प्रेम करना तो स्वभाविक धर्म है। पर मैं तो अपने से बैर करने वालों पर भी कृपा ही करता हूँ। दुष्टों के दलन में भी मेरी प्रेम धारा बहती ही रहती है। मुझे गिन गिन कर गालियाँ देने वाले, और रण-भूमि में शत्रु बनकर लड़ने वाले भी, जब मोक्ष ही पाते हैं। तब भला मैं सतत स्मरण करने वाले, प्रेमियों को कैसे भूल सकता हूँ।

श्रीकिशोरीजीः--हे श्रीमनमोहन प्यारे जू ! आप भक्तों को न भूलें, यह तो ठीक है। पर इतने अधिक आधीन होने का क्या कारण है। क्योंकि-आपको तो उनसे कोई स्वार्थ भी नहीं है। भला बिचारे वे जीव, आपको क्या लाभ पहुँचा सकते हैं। जब कि आपने ही कृपा करके, सबको सब कुछ दिया है। तब फिर आपको कोई भी क्या दे सकता है। यहाँ तक कि-आप भक्तों

के आधीन होकर उनकी सेवा तक करने लगते हैं। इसका क्या कारण है।

श्रीरामजीः--हे श्रीसुनयनानन्दबर्धनी जू ! मैं आपकी शपथ करके कहता हूँ, कि-शुद्ध प्रेमी भक्त मुझको, प्रेम बन्धन में बाँधलेते हैं। इसी लिये मुझे उनके आधीन होना पड़ता है, फिर वे जैसे कहते हैं, मैं वैसा ही करता हूँ। वे मुझे जैसे नचाते हैं मैं वैसे नाचता हूँ। हे प्रिये ! मेरा स्वभाव ही ऐसा पड़ गया है, कि-दीन हीन प्राणी को देखकर, मेरा हृदय दया से भर जाता है। उनको अपनी ओर आकर्षित करने के लिये, शास्त्र और सन्तों के द्वारा सन्देश भेजता रहता हुँ। तो भी वे अभागे जीव, मेरी ओर घूमकर ताकते भी नहीं हैं। जैसे जहर के कीड़ों को जहर ही अच्छा लगता है। उसी प्रकार उनको बिषय ही अच्छे लगते हैं। यदि उनमें से कोई, सन्तों और शास्त्रों का बचन मानकर, मेरी शरण में आ जाता है। तो मैं उसको अपना लेता हूँ। उसे शुद्ध करके सम्यक प्रकार से अपना प्रेमी बना लेता हूँ। जब वह मेरा बन जाता है, और मैं उसका बन जाता हूँ। तब फिर वह मेरी दिव्य विभूति का, पूर्ण अधिकारी बन जाता है। और मैं उसे, सबसे अभय बना देता हूँ। यहाँ तक कि प्रेमी भक्त के हाथों मैं बिक जाता हूँ।

श्रीकिशोरीजीः--हे श्रीराज राजेश्वर जू ! आपकी सुख सरसावनी आनन्द वर्षावनी, वाणी को सुनकर तृप्ति नहीं होती है । आपको अपने सगे सम्बन्धी परिवार परिकरों से भी, प्रेमी भक्त अधिक प्यारे हैं । आपकी इस दयालुता की जय हो। परन्तु एक बात और बताइये कि-आप भक्तों के किस गुण पर रीझकर बस में हो जाते हैं ।

श्रीरामजीः--हे श्रीमृदुमंजुभाषिनीजू! भाव पूर्वक जो भक्त मुझे भजते हैं, वह मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं, बिना प्रेम भाव के, कोई कितनी भी बातें बनावे किन्तु मुझे अच्छी नहीं लगती हैं । और प्रेम भाव से मुझे एक बार भी पुकार दे, तो मैं तुरन्त दौड़कर आता हूँ। बिना भाव के कोई सब कुछ दान दे डाले, और तपा तपा कर शरीर को जलादे, तो भी मेरा दर्शन दुर्लभ है। और प्रेम भाव वाले भक्त को तो, कुछ कष्ट भी नहीं करना पड़ता है। मैं सहज में ही उनकी सभी अभिलाषाओं को, पूर्ण कर देता हूँ। प्रेमी भक्त का पूर्ण रूप से मुझपर ही भार रहता है। इस लोक तथा परलोक में, मैं स्वयं ही उसका भरण पोषण करता हूँ । भक्तों के लिये सब कष्ट सहकर भी, उनकी सेवा करता हूँ । और इसमें मुझे महान सुख मिलता है। हे शोभा गुणआगरी जू ! आप से

मैं क्या छिपाऊँ, सच बात तो यह है कि—मुझे शंकरजी, शेषजी, और ब्रह्माजी, तथा स्वयं अपनी आत्मा भी उतनी प्रिय नहीं है, कि– प्रेमी भक्त मुझे जितने प्यारे हैं। वेदों का सिद्धान्त है कि–आत्मानन्द प्रियोभवति, किन्तु मेरा सिद्धान्त है, कि–प्रेमी भक्त ही मेरे सर्वस्व हैं। वह मुझे आत्मा से भी अधिक प्रिय हैं। अस्तु जो कोई मेरे प्रेमी के काम आवे, वही व्यक्ति तथा वस्तु भी मुझे प्रिय है। जो कोई मेरे प्रेमी भक्तों से बैर करता है, और मेरे चरणों की पूजा करता है वह मुझे प्रिय नहीं होता है। मेरे भक्त की पूजा ही मेरी सच्ची पूजा है। यदि कोई मेरी पूजा न करे, और मेरे प्रेमी भक्त की पूजा करे, तो मैं मिल सकता हूँ। किन्तु मेरी पूजा करने वाले को भी भक्त विरोधी होने से मैं कभी भी नहीं मिलता हूँ। अधिक क्या कहूँ, प्रेमी भक्त के लिये ही मेरा सर्वस्व है। उनके बिना मैं कुछ नहीं जानता, और वह मेरे विना कुछ भी नहीं जानते हैं। भक्त मुझे प्रगट करते हैं, और मैं भक्तों को प्रगट कर देता हूँ। वे मेरे हाथ बिक जाते हैं, मैं उनके हाथ बिक जाता हूँ। वह मेरे लिये व्याकुल रहते हैं, मैं उनके लिये व्याकुल रहता हूँ। वास्तव में वह मेरे लिये हैं, और मैं उनके लिये हूँ।

❋ प्रेम पुष्प ❋

श्रीकिशोरीजीः—हे श्रीप्राणनाथ जू ! आप सर्व सामर्थ होते हुये भी, भूतल में बार बार अवतार लिया करते हैं। इसका क्या कारण है।

श्रीरामजीः—हे श्रीमिथिलेशकिशोरी जू ! यद्यपि आप सभी बातों को ठीक से जानती हैं। फिर फी इस प्रकार प्रश्न करना यह आपकी लीला है। अस्तु आप सुन-कर आनन्दानुभूति कीजिये। मैं बतलाता हूँ, कि मैं क्यों अवतार लेता हूँ। यों तो दुष्टों का दलन, और सज्जनों का कल्याण तो मेरी इच्छा मात्र से ही हो सकता है। अन्यान्य रूप धारण करके भी, अन्य कार्य सदा करता ही हूँ। किन्तु—प्रिये—

दोहाः—

रसिक भक्त मधुकर सदृश, मम पद पद्म पराग।
पीवन हित व्याकुल रहत, पगे परम अनुराग ॥ १ ॥
तिनहिं देन सुख स्वाद अति, मधुर मंजु धरि रूप।
प्रगटि करौं लीला ललित, रसमयि परम अनूप ॥ २ ॥

वार्ताः—हे श्रीमैथिली जू ! मेरी रूप माधुरी के आस्वादन करने वाले, रसिक भक्त मुझे अति प्रिय हैं। इसलिये कि-वे मेरे प्रेम के सामने, ब्रह्मा, इन्द्र तथा शिव पद

को भी नहीं चाहते हैं। हमारे प्रेम से विहीन, जो एक छन भी जीवन धारण करना नहीं चाहते हैं। कैवल्यादि मुक्तियों को भी तुच्छ समझते हैं। वे सर्वदा मेरे ही स्वरूपानन्द सागर में अवगाहन करते रहते हैं। हमारे दर्शन के बिना रात दिन बिकल रहते हैं, उन्हीं के नयन तृषा को तृप्त करने के लिये ही, मुझे मृत्यु लोक में अवतार लेकर, अपनी इस अनुपम रूप माधुरी का पान कराना पड़ता है। उन परम प्रिय प्रेम पागलों की हठ को, मुझे पूरन ही करना पड़ता है। हे प्यारी जू! क्या करें, जब वे प्रियभक्त मेरे बिना मरने की अवस्था में प्राप्त होकर हा नाथ, हे जीवनधन आदि आह भरी आवाज से मुझे पुकारते हैं। तब मुझसे रहा नहीं जाता है। ठीक है जिस तरह गाय अपने नवजात शिशु का करुण क्रन्दन सुनकर अकुलाकर दौड़ती है। उसी प्रकार मैं भी अधीर हो जाता हूँ, और व्याकुल होकर उनके पास जाकर, उन्हें हृदय से लगाता हूँ। उस समय जगत का कोई भी कार्य मुझे करना प्रिय नहीं लगता है। यथा बछड़े की आवाज सुनकर गाय सुन्दर से सुन्दर चारा छोड़कर अपने शिशु के पास जाकर ही सुखी होती है। उसी भाँति मैं भी-प्रेमी भक्तों के पास में बँधकर उनकी सभी रुचियों का पालन करता हूँ। जितने मेरे प्रेम के लिये, तीनों लोकों की सम्पत्ति, देव दुर्लभ

सुख, बैकुण्ठादिकों के बैभव को त्रण के समान त्याग दिया है। केवल मेरी रूप सुधा माधुरी ही जिनका जीवन है। ऐसे ही प्रेमियों को रिझाने के लिये ही मैं अपने इस अनुपम मधुराति मधुर स्वरूप से प्रगट होकर, उनके साथ रहकर परस्पर में प्रेमानन्द का आस्वादन करता हूँ। प्राणाधिक प्रिये! प्रेम सभी पदार्थों से मधुर और प्रिय बस्तु है। इस जगत में प्रेम का ही सारा खेल है।

श्रीकिशोरीजी:--हे राजिवलोचन श्रीप्राणप्रियतम जू! प्रेम का क्या स्वरूप है, मुझे बतलाने की कृपा कीजिये।

श्रीरामजी:--हे प्रेमाब्धि विवर्द्धनेन्दुबदने श्रीविदेहनन्दिनी जू! प्रेम का स्वरूप वाणी से किस प्रकार बतलाया जाय, उसका पूर्णतः अनुभव तो हम दोनों ही परस्पर में कर पाते हैं। किन्तु सम्यक प्रकार से वर्णन करने की शक्ति मुझ में भी नहीं है। फिर भी आपके सन्तोषार्थ सन्छेप में कुछ कहता हूँ, श्रवण कीजिये।

श्लोकः—

अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपं। मूकास्वादनवत् ॥

प्रकाशते क्वापि पात्रे। गुणरहितं कामना रहितं ॥

प्रतिक्षण वर्धमानमविच्छिन्नम् सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ॥

हे हृदयोल्लासिनी श्रीप्राणप्रिया जू ! इस प्रेम के अनन्तामृत की माधुरी का स्वाद अपार है। और सर्वत्र सबको प्राप्त हो सकता है। किन्तु ऐसा होता नहीं है। किन्हीं २ बड़भागी जनों में ही यह प्रकाशित हो पाता है। सरल होने पर भी सभी इसके प्राप्ति का प्रयास नहीं कर पाते हैं। व्यर्थ ही अपार कष्ट प्रद साधनाओं में उलझे रहते हैं। इस प्रेम पथ पर भी आने वालों में से भी, कोई विरले ही इसका एकरस निर्वाह कर पाते हैं। सिंहिनी का दूध स्वर्ण पात्र में ही ठहर सकता है।

दोहा:—

तुलसी जप, तप, नेम, व्रत, है सब ही सब होय।
नेह निवाहन एक रस, विरला जानत कोय ॥ ३ ॥

वार्ता:--जो प्रीति क्षण में घटती बढ़ती रहती है, उसे प्रेम नहीं कहना चाहिए। वह वास्तविक प्रेम नहीं है। किन्हीं गुणों को देखकर जो प्रेम बढ़ जाय, और अवगुणों को देखकर घट जाय वह प्रेम कहाँ है।

दोहा:—

बिन गुण यौवन को लखे, बाढ़त प्रेम प्रधान।
सकल कामना ते रहित, प्रेम, यही रस खान ॥ ४ ॥

वार्ता:—दुर्गुणों को देखकर, प्रेम घट जाना तो दूर की बात है। अपने प्रियतम में दोष और दुर्गुणों का देखना ही प्रेम नहीं है। सच्चे प्रेम में तो प्रेमास्पद के दोष और दुर्गुण भी, भूषण तथा दिव्य गुण गण ही प्रतीत होते हैं। अपने प्रिय के द्वारा प्राप्त हुआ दुःख भी, शत-शत सुधा के समान आनन्द प्रदायक प्रतीत होता है। और अपने प्रियतम के क्षणमात्र का स्वल्प क्लेश भी असह्य हो जाता है। तथा प्रिय की देह प्राणादिक का त्याग होने पर भी प्रेमी को अपने प्रियतम का विछोह ज्ञात नहीं हो पाता है। क्योंकि प्रेमी का प्रेमास्पद उसके नेत्र तथा हृदय में सदा निवास करता है। अस्तु उसकी दृष्टि जहाँ पड़ती है, सर्वत्र अपना प्रियतम ही दिखाई पड़ता है। बस, प्रिया जू ! प्रेम का वाह्य स्वरूप, कुछ ऐसा ही होता है।

* रोला छन्द *

निज प्रियतम के दोष विपुल गुण सदृश जनावत।
प्रिय को दीन्हों कष्ट सुधा शत सम सरसावत ॥ १ ॥
पिय को स्वल्पहुँ कष्ट दुखत अति नहि सहि जावै।
छूटेउ तासु शरीर नहीं बिशलेश जनावै ॥ २ ॥

वार्ता:—प्रेम किन्हीं परिस्थितियों में भी घटता नहीं है। निरन्तर

बढ़ना ही इसका सहज स्वरूप है। विशेषता तो यह है कि-सर्वदा बढ़ते रहने पर भी इसकी पूर्णता कभी भी नहीं होती है। घटने की तो कोई बात ही नहीं है। अस्तु घटने बढ़ने वाला प्रेम-कच्ची अवस्था की साधारण स्मृति है वास्तविक प्रेम नहीं है।

❋ श्रीगुरु महिमा ❋

श्रीकिशोरीजीः—हे श्रीकरुणावरुणालय, प्रेमसागर, नवल-नागर, दीनबन्धु सुखसिन्धु, कृपया आप मेरी प्रार्थना सुनिये। आप प्रसन्नता पूर्वक मुझे यह बतलाइये, कि-आपका चिदांश यह जीव, काल तथा कर्मों के चक्कर में पड़कर, नानाप्रकार के अनेक क्लेशों का अनुभव करता है। निर्हेतुकी कृपा करने वाले आप, किस प्रकार से इन्हें अपनाते हैं। अज्ञान रूपी अँधेरे से आच्छादित नेत्रों को, अपना साक्षात् किस प्रकार कराते हैं।

श्रीरामजीः—हे प्रिया जू सुनिये—

सवैइया—सुर दुर्लभ मानुष को तन दै,
मन इन्द्रिय बुद्धि दे ज्ञान कराऊँ।
पुनि मातु पिता अरु बन्धु सखा,
शुचि शास्त्रन सों बहु भाँति सिखाऊँ॥

चेते तबहुँ जड़ जीव नहीं,
सुनिये मिथिलेशलली समुझाऊँ ।
हौं ब्रह्म अखण्ड तबै तेहि हेतु,
धरौं नर देह गुरू बनि आऊँ ॥

श्रीकिशोरीजीः—

जेहि लगि मानुष तन धरत, आप बनैं गुरुदेव ।
क्या महत्व गुरुदेव को, नाथ बतावैं भेव ॥

श्रीरामजीः—हे श्रीमैथिली जू ! अब मैं आपको श्रीगुरुदेवजी की महिमा सुनाता हूँ ; कृपया सावधान होकर सुनिये। इस अपार संसारसागर से पार होने के लिये सरल से सरल साधन यह है, कि-शुद्ध भाव से श्रीगुरुदेवजी की शरणागति स्वीकार करे। श्रीगुरुदेवजी द्वारा अपनाये हुये जीवों पर, मैं शीघ्र ही कृपा कर देता हूँ। मेरी कृपा होने पर, मेरी महा माया देवी भी उस पर से अपना शासन हटा लेती है। तब वह जीव स्वच्छन्दता पूर्वक सुख से भजन कर पाता है।

श्रीगुरुदेवजी से माया उसी प्रकार घबराती है, कि-जैसे सिंह से बकरी डरती है। दुखी जीव को शरण में आया जान श्रीगुरुदेवजी, मेरे नाम सम्बन्धी नाम, परमपावनी तुलसी की माला, ऊर्ध्वपुण्ड तिलक, मेरे धनुष वाणादिकों की छाप, तथा मेरा युगल मन्त्र

प्रदान कर उस प्राणी को मेरा स्वरूप बना देते हैं। फिर वह जीव मेरा बनकर विश्व में जहाँ भी रहे मेरी कृपा से, सुख सुविधा पूर्वक जीवन बिताते हैं। मेरीशरणमें आने का सुगम उपाय श्रीगुरुदेवजी की कृपा ही है। अन्यथा जिसने श्रीगुरुदेवजी की शरण ग्रहण नहीं की, वह चाहे ब्रह्मा तथा शंकर के समान विभव और प्रतापवान क्यों न हो। किन्तु मुझे प्रिय नहीं होता है। और न इस अपार संसार-सागर से पार ही होता है। स्वकर्माधीन स्वर्ग नर-कादिकों का भ्रमण छूटना कठिन होता है। श्रीगुरु-देवजी की कृपाश्रित जीव ही मेरी शरण में आने का अधिकारी है। श्रीगुरूजी महाराज कृपा के सागर होते हैं। उनके बचन मोह रूपी अन्धकार को नाश करने के लिये सूर्य किरण के समान हैं। उन श्रीगुरु-देवजी के श्रीचरणकमलों में जिसको अनुराग है। वही जीव बड़भागी है। श्रीगुरुदेवजी की श्रीचरण धूल इतनी पवित्र है कि-जो प्रेमी इसको सेवन करता है, तो उसके भवरोग को नाश कर, मेरे नित्य धाम की, प्राप्ति कराती है। श्रीगुरुदेवजी के नख मणिचन्द्र का स्मर्ण करते ही, हृदय में दिव्य दृष्टि हो जाती है। जिसके प्रभाव से हमारे गुप्त से गुप्त चरित्र भी हृययनिकुंज में प्रगट दिखाई पड़ने लगते हैं। हे श्रीप्राणप्रिया जू! श्रीसद्गुरुदेवजी का उपदेश ही

एकमात्र, हमारीभक्ति प्राप्त करने का श्रेष्ट आश्रय है। श्रीगुरुवर के उपदेश में श्रद्धा प्रेम होना, बड़े सौभाग्य की बात है। श्रीगुरुदेवजी की कृपा के अतिरिक्त, संसार में और कोई भी ऐसा सरल साधन नहीं है, कि जीव मेरी प्राप्ति का सुख अथवा हमारी प्राप्ति कर सके।

*** सवैइया ***

श्रीगुरुमूरति ध्यान धरो, निशिबासर प्रीति प्रतीति जमाई।
श्रीगुरु बैन सचैन सुनो, भव बासना वृन्द विशेष नशाई॥
काहु से लेन न देन रखो, गुरुदेव सुआश पियास सदाई।
याही विधि प्रेम छके रहिये, गुरुदेव प्रसाद उछाह बढ़ाई॥

वार्ता:- हे श्रीलाड़िली जू! जबतक जीव श्रीगुरुदेवजी को ठीक से नहीं जानता है। तब-तक उनमें श्रद्धा व दृढ़ प्रेम नहीं होता है। और जबतक श्रीगुरुदेवजी में श्रद्धा प्रेम नहीं होता है, तबतक उसे हमारे स्वरूप का बोध तथा हमारी भक्ति भाव का, भेद नहीं मालूम होता है। और जबतक भक्तिभाव की ठीक से जानकारी नहीं होती है, तबतक मेरी गुप्त से गुप्त दिव्य रसमयि लीलाओं का ज्ञान नहीं होता है। और न मेरी प्राप्ती ही होती है। ऊँचे कुल में जन्म

लेने से, या उत्तम विद्या प्राप्त करने से, यज्ञसे, कठिन तपस्या से, या योगादि साधनों से, श्रीगुरु-देवजी की शरण में बिना गये, मेरी प्राप्ति नहीं होती है। पुनः अदीक्षित यानी निगुड़ा मनुष्य जप पूजादि जो भी साधन, शुभ कर्म करता है, वह राख में हवन करने के समान या पत्थर में बीज बोने के समान व्यर्थ है। हे प्रिया जू! जो श्रीगुरुजी महाराज की शरण नहीं होते हैं, उनको अन्त में बहुत पछताना पड़ता है। इसका कारण यह है कि वह मनुष्य नेत्र और बुद्धि से मोहित होकर माता पिता आदि शारीरिक सम्बन्धियों से ही वात्सल्य करुणा आदि गुणों का होना मान लेते हैं। और प्रीति पूर्वक उनके लिये किये हुये उपकारों के अनुसार सुख की आशा में अपना अमूल्य जीवन बिता देते हैं। तथा मृग की भाँति तीनों तापों से, तपते हुये मृगतृष्णा रूपी प्यास से व्याकुल रहते हैं। एवं परिवारमें आशक्तिके कारण, काल पाकर कर्मानुसार, उन्हीं के कुत्ता बिल्ली आदि होते हैं। परन्तु मृगतृष्णा के जल के समान जीव को, स्वरूप का सुख नहीं मिलता है। इसी से स्थिरता नहीं आती है।

हे प्यारी जू! श्रीगुरुजी महाराज के सनमुख जाते ही जीव के हृदय में माया रूपी अन्धकार का नाश,

दरिद्रता का हरण, तथा अनेक प्रकार के विघ्नों का नाश हो जाता है। जिसने पाँचों इन्द्रियों तथा उनके विषयों समेत मन को शान्त करके श्रीगुरुजी महाराज की सेवा में लगा दिया है। अथवा श्रीगुरुजी महाराज ने ही स्वस्थचित्त होकर जिसके मस्तक पर अपना कृपामयी करकंज स्पर्श कर दिया है। तो जानना चाहिए कि इसे सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त हो गया है। जिसपर श्रीगुरुदेवजी की कृपा हो जाती है। उसको लोक परलोक दोनों का सुख प्राप्त हो जाता है। हे प्यारी जू ! श्रीगुरुदेवजी यदि क्रोधी हों तो उन्हें नरसिंह अवतार जानना चाहिए। यदि लोभी हों तो बावन अवतार, और यदि द्रोही हों तो परशुराम अवतार और यदि नाना प्रकार की लीलायें करने वाले हों तो कृष्ण अवतार, और यदि सत्य-सन्ध हों तो साक्षात् मेरा ही स्वरूप मानकर सेवा करे। भक्ति दाता हों तो नारदजी का अवतार जाने, यदि तपस्वी हों तो महा मुनि माने। उनकी आज्ञा को पालन करे। उनकी देखा देखी कभी भी न करे। उनकी निन्दा न कभी करे, न कानों से सुने। हे प्रिया जू !

दोहाः—श्रीगुरु निन्दक जीव जो, ते सब अति अघ रूप।
ज्ञान ध्यान सेवौ करत, अवसि परै भव कूप ॥

❋ रसिया पद ❋

श्रीरामजीः—

सुनिय प्रिये अब तुमहिं सुनावौं गुरु महिमा बिस्तार।
गुरु महिमा बिस्तार तासु, की करुणा अमित अपार ॥
गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु कहायो, गुरुहिं शम्भु, अस शास्त्रन गायो, वेदन गाय पार नहिं पायो। सोह ब्रह्म अज अलख निरंजन, गति अविगत गो पार ॥ सुनिय० १ ॥

जीव अज्ञ अतिशय अभिमानी, भूमि परत माया लपटानी, हित अनहित कछु परत न जानी। तब गुरुदेव कृपालु कृपा ही, आयकरत उद्धार ॥ सुनिय० २ ॥

कृपाकोर करि गुरु अपनावै, शाश्वत सुखमय मार्ग दिखावै, हृदय जनित अज्ञान छुड़ावै. मोसनदेत मिलाय जाहि लगि कर ऋषि मुनि तपभार ॥ सुनिय० ३ ॥

कोउ न गुरु विन भव तरि पावै, करत विपुल साधन भरमावै, बिन गुरु कृपा तत्व नहिं पावै। भटकत नाना पंथ शास्त्र के तदपि न पावत पार ॥ सुनिय० ४ ॥

याते सुखमय गुरु सेवकाई, बड़ेभाग जाके हिय भाई, सुर दुर्लभ सद ग्रन्थन गाई। श्रीगुरु कृपा कोर बिन कोई होत न भवनिधि पार ॥ सुनिय० ५ ॥

वार्ता:--अस्तु सभी जीवों को श्रीसद्गुरुदेव का आश्रय ग्रहण करके, सादर सप्रेम सेवा करना चाहिए। भवसागर

से पार होने के लिये, श्रीसद्गुरु भगवान की कृपा ही एक मात्र आधार है।

❀ रसिया पद ❀

तन, मन, धन, सुख सारो, गुरु पद पै वारो।
श्रीगुरु पद नख ज्योति प्रभा लखि, भाग महातम भारो ॥
भारो भीरहू में भीर, जीव अधिक अधीर, जग नाचै, जैसे कीर, पड़े कर्मन के दंड। दंड छूट जो चहो, श्री गुरु पद गहो, सदा छेम से रहो, कर्म छाँड़ि सब उदंड ॥ कर्म छोड़ि सब निपट लपट गुरु, कल्प वृक्ष पद डारो ॥ वारो तन० ॥

पदकंज को पराग, पंच बास जाय भाग, छन छन अनुराग, बढ़ै प्रेमको तरंग। रंग अंग में बढ़ै, कलिमल सब कढ़ै, भाव भक्ति उर गढ़ै, पद सरिता सी गंग ॥ गंग गोदावरि तीर्थराज से गुरुपद रज शिर धारो ॥ वारो तन० ॥

पद कोमल ललाम, छवि शोभा सुख धाम, ध्यान धरु अष्टयाम, बड़े काम को चरन, चरन चित्तचट देइ, भाव भक्ति भरे सेइ, फलचार झट देइ, ऐसो मंगल करन ॥ मंगलमय महिमा मंजु चरण गुरु मोद भरो भंडारो ॥ वा० ॥

पद परम पवित्र, चित्त भीति लिख चित्र, तरे कोटि कुल पित्र, गुरु सन्मुख जो होय, होय गुरु की शरन, छूटै जनम मरन, भव तारन तरन, गुरुपद रज धोय। पद-रज धोवन मधुर मधूमय अमृत की सी धारो ॥ वारो तन० ॥

और कहूँ नहीं ठौर, मन बीच करो गौर, सब झूठ दौरा दार, बस गुरु पद की आस। आस सबही निरास, दृढ़ करि विश्वास, भवभय अनायास, शूलनाश को सुपास॥ सब सुपास पद पास गुरूके पद बिनु नहीं उबारो ॥वारो०॥

गुरु ब्रह्मा औ महेश, शुकमुनि कहैं शेश, नाश होय सब क्लेश, गुरु विष्णु परब्रह्म। ब्रह्म पद की निसेनो, भक्ति मुक्ति पद देनी, गुरु पद में त्रिवेनी, गुरु पदपर्व कुम्भ॥ "सरससंत" पद पर्व गर्व करि उतरो भव निधि पारो ॥वारो तन० ॥

वार्ता:—अस्तु प्रिये श्रीगुरुदेवजी की महिमा अपार है इसलिए सभी को चाहिये कि-श्रद्धा भक्ति पूर्वक श्रीगुरुवचनों पर विश्वास करके भवसागर से पार हो जायें।

❀ श्रीसरयू जी की महिमा ❀

श्रीकिशोरीजी:—हे श्रीहृदयरमण जू ! यह श्रीसरयूजी परम-पावनी हैं, ऐसा मैंने सुना है। हे जीवनधन! मैं यह जानना चाहती हूँ, कि पृथ्वीतल पर, इनको कौन महाँपुरुष, किसप्रकार लाये हैं। आर्यसुवन, यह हमारे प्रिय परिकर वृन्दभी, आपके श्रीमुखारविन्द से, श्रीसरयूजी की महिमा तथा इनकी उत्तपत्ति सुनने

की प्रबलइच्छा, अपने मनमें कर रहे हैं। अस्तु आप सुनाने की कृपा कीजिये।

श्रीरामजीः—

दोहाः—हे ममजीवन धन प्रिये, आनँद वर्धनिहार।
मधुर मंजु मृदुभाषिनी, रसनिधि परम उदार ॥ १ ॥
अखिलविश्व उपकारिणी, सबको सुखद अपार।
क्षमारूप करुणामयी, मूर्ति सकल सुखसार ॥ २ ॥

छन्द—यद्यपि हे भामिनी भेद भल भाँति सकल तुम।
जानौं श्री मैथिली तदपि सुनिये वरणौं हम ॥१॥
यद्यपि चरित अपार यथाश्रुत कछुक सुनावौं।
जिमि आई भूलोक माहिं सोइ रहस बतावौं ॥२॥

वार्ताः—हे श्रीप्राणसंजीवनी जू! जब यह शृष्टि हुई, तब विश्व में कोई भी नगर नहीं था। प्रजावर्ग यत्र तत्र रहकर किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह करती थी। सर्व प्रथम श्रीअयोध्यजी ही अपने नित्य धाम से नगर रूप में अवतीर्ण हुई हैं। हमारे ही वंश परम्परा में, हमारे पूर्वज महाराजाधिराज श्रीइक्षाकुजी हुये हैं। उन्होंने गुरुदेव श्रीवशिष्ठजी से प्रार्थना की, कि हे प्रभो! बिना किसी पावन नदी के पुरी की शोभा अधूरी ही है। अस्तु यदि आप, किसी पावन नदी को लाने की कृपा करते, तो प्राणिमात्र को सुविधा हो

जाती। और जीवों के कल्याण का मार्ग भी बन जाता। तब गुरुदेव श्रीवशिष्ठजी ने, लोककल्याणार्थ उत्तराखण्डमें जाकर तपस्या की, शीघ्र ही प्रसन्न होकर, श्रीब्रह्माजी ने श्रीसरयूजी को प्रदान किया। तभी से ये श्रीसरयूजी यहाँ पर अपनी प्रेममयी धारा बहाकर लोक कल्याण कर रही हैं।

रोला छन्दः—यह श्री सरयूसरित परमपावन अघहारी।
दरश परश जेकरहिं होहिं ममपद अधिकारी ॥३॥
कैसेउ पापी अधम तजै तन सरयू तीरा।
अवसि जाय ममधाम सहै नहिं पुनि भवभीरा ॥४॥
जे सरयूजल पानकरत तिनके अघसारे।
नाशत सकल समूह कहत श्रुति संत पुकारे ॥५॥
जो बसि सरयूतीर सततसुमिरत ममनामा।
ते सबसे प्रिय मोहिं बिकौं तिनकर विनदामा ॥६॥
यद्यपि तीरथअमित सकल श्रुतिशास्त्रन गाये।
पर श्रीसरयू सरिस अपर मम हृदय न भाये ॥७॥
मैं नित नवल बिहारकरौं सरयूसरितीरा।
इनकी महिमा अतुल अकथ नाशत भवभीरा ॥८॥
जेहि जनको मैं चहौं याहि लेवौं अपनाई।
तेहिको सरयूनिकट बास मैं देउँ सदाई ॥९॥
बिन ममकृपा कटाक्ष करै किन कोटिप्रयासा।
पर श्रीसरयू सुतट निकट कोउ लहै न बासा॥१०॥

वार्ता:--हे श्रीप्राणवल्लभे ! मैं श्रीसरयूजी के किनारे परिकरों समेत आपके साथ अनेकप्रकार नित्यनवीन बिहार किया करता हूँ। अस्तु ये श्रीसरयूजी मुझे अत्यधिक प्रिय हैं।

❋ श्री प्रेमविनोद ❋

श्रीप्रियाजूका बचन:--

दोहा:-मोको अति प्यारे लगत, प्रियतम राजिव नैन।
मनमोहन मनमें बसो, सदा सरस सुख ऐन ॥ १ ॥
प्रेमनिधी प्रतिछिनहिं छिन, बाढ़त प्रेम तरङ्ग।
मृदु मुसुकनि युत मुख निरखि, चढ़त चौगुनोरङ्ग ॥ २ ॥

अर्थ:--हे रसिक रसलम्पट श्रीराजेश्वरकुमार जू! आपके एक से एक, विलक्षरण गुणों को अवलोकन कर मेरामन तो, प्रतिदिन आपके प्रेमपाशमें, अधिकाधिक प्रौढ़रूप से बँधताही चलाजाता है। तथा हे जगमङ्गल श्रीप्राणप्यारे जू! आप मुझपर जब अनन्त प्यार करते हैं। तबतो छबीले छयलकी मदनमदहारणी, दिव्यमूर्ति नयनोंमें ताराकी भाँति सदा बसजाती है। हृदय आनन्दसागर में, मग्न हो जाता है। और सबकुछ भुलाकर, मन प्रेम समाधि में लीन हो जाता है। हे श्रीप्राणेश्वर जू!

श्रीप्रियतम जू का बचनः--

दोहा-हे मम प्राणाधिक प्रिये, रूपशील सुख सार।
रसबर्धन नागरि नवल, मम जीवन आधार ॥ १ ॥
मेरीसर्वस सर्वदा, दायनि परमानन्द ।
गुणगण गर्वीली प्रिया, कृपा मयी सुखकन्द ॥ २ ॥

अर्थः—हे रूपराशि चन्द्रबदनी श्रीकिशोरी जू ! मैं तो स्वयं आपके गुणों की थाह नहीं पाता हूँ। कभी कभी जब आप, प्रेम प्रणयवश मानकर बैठ जाती हो। उस समय क्षणभरके, मिथ्या वियोग जन्य दुख से भो, मेरा हृदय ब्याकुल हो जाता है। और मैं अपने मन में स्वयं अपने ही दोषको विचार कर, आपके अनन्त गुणोंका परम कलित ललित भण्डार देखने लगता हूँ। तब मैं स्वयं अपने ही दोष का मार्जन करने के लिये, आपको प्रसन्न करने के,नाना विधान पूर्वक, अनेक उपाय करने लगताहूँ । हे हंसगामिनि प्रिय भामिनि जू ! यही कारण है कि प्रेमीजन आपकी कृपा प्राप्त कर, मुझे अपने वश करलेने में, परम समर्थ हो जाते हैं।

श्रीप्रियाजूका बचनः—

हे रसबर्धन मदन मद मर्दन, श्री प्राणवल्लभजू! आपके मधुर रसीले, गुण गर्वीले, बचनों को सुनकर

मेरे हृदय में परमानन्द लहराता है। आपके कोटि-काम कमनीय, परम रसमयि प्रिय विग्रहको प्रेम भरे नयनों से अवलोकन कर, कौन ऐसा हतभागी जीव होगा, जो अपना तन, मन, धन, सर्वस्व वारने में विलम्ब करेगा।

दोहा:—चपल चतुरचितचोर पिय, श्रीअवधेश कुमार।
कोटि कोटि कन्दर्प की, सु छवि विनिन्दनहार ॥३॥
हतभागी जग जीव को, पिय छवि सिन्धु निहार।
गुनशीला पगि प्यार में, देइ न सर्वस वार ॥ ४ ॥

अर्थ;—हे चतुर चितचोर श्रीरसिक शिरोमणि जू ! आपके सरस सोहावन, मुनि मन भावन, पावनाति पावन, पादारविन्दोंमें, प्रेम करनेवाले परम धन्य हैं। और कृतार्थ रूप हैं। आपके श्री अङ्गों पर, जब बिभूषणादि नहीं रहते हैं,उस समय तो आपका निरावरण सौन्दर्य्य, और भी लावण्य धाम परम ललाम श्री-अङ्गों की, दिव्य आभा को अवलोकन करती हूँ। तब आपके प्रेम का सरस रङ्ग, समस्त भव भङ्गों को भेदन कर, चौगुना चमकदार बना देता है।

❋ श्रीप्रियतम जू का बचन ❋

दोहा:-अहो प्रेमरसवर्षिनी, मममन कर्षनिहार।
सुधा विनिंदक प्रियवचन, मृदुतर सुखद उदार ॥३॥

श्रवणकरत हिय सुख बढ़त, अपनो सत्व भुलाय।
हे गुणशील उजागरी, तवछवि रह्यो लुमाय ॥ ४ ॥

अर्थः—हे प्रेमरसबर्षिनी मन आकषनी श्री हृदयेश्वरी जू ! आपकी सनेहसानी, सुखदानी प्रियबानी, को सुनकर मेरा मन तो और भी आपके प्रेमपङ्क में गड़ गया है। जिसका निकलना अशक्य ही नहीं, असम्भव ही है। आपकी हृदय हारिणी प्रेमप्रचारिणी हँसी, मृदु मुसुकान सुषमा निधान मङ्गल मोद की धाम, श्री मुखारविन्द, आपकी मनोन्माद कारिणी मंजुल वाणी, आप की गजराज और हंस की लज्जित करने वाली मस्तानी मधुर चाल, एवं सनेह पूर्ण प्रेम रस बर्धन आनन्द निधान, शोभा धाम, आपका सुशील स्वभाव, मेरे हृदय को अपने बशमें करते क्षण मात्र भी देर नहीं लगाते हैं। यही कारण है कि मैं अनन्त ब्रह्माण्डोंका नायक स्वतन्त्र सर्वेश्वर होते हुये भी, सर्वदा आपके वशीभूत रहता हूँ आपके प्रति मुझे इतना अनुराग है, कि आप के मुखचन्द्र के दर्शन बिनापाये, एकक्षण भी मैं जीवन धारण करना, उचित नहीं समझता हूँ। आपमेरी आत्मधन सर्वस्व सब सुख दाता हैं।

श्रीयुगलसरकार का एक साथ परस्पर सम्बाद

नग लेहुप्रिया, गिरि कैसे उठाऊँ, भूषनहै, नहिभूखहमारे।
उर गोरी लसे, श्री शंकर के, लर तीनको है, इर्षा न हमारे॥ १।
करधारो यही, जु भरो केहि को, नगनील जड़े, जड़ता जनधारे।
वरबैन कहो, नहि छन्दपढ़ी, बतियाँ जुकरो, नहिं दोषक बारे॥ २॥

श्रीरामजी:--हे श्रीकिशोरीजू ! आप यह नग लीजिये।

श्रीकिशोरीजी:--हे श्रीप्राणप्यारेजू ! पर्वत उठाना आपका काम है। हमारा काम पर्वत उठाने का नहीं है। फूल उठाने का है, सो मैं फूलउठा रही हूँ।

श्रीरामजी:--हे श्रीप्रियाजू ! आपने नगका अर्थ पर्वत लगा- लिया है, नहीं नहीं, यह नग एक भूषण है।

श्रीकिशोरीजी:--हे श्रीप्राणवल्लभजू ! जब हमें भूख ही नहीं लगीहै, तब भोजन कैसे करूँ। जिसे भूख लगी हो, उसे भोजन करवाइये।

श्रीरामजी:--ए गोरी ! हम तो नग अर्थात् आप को भूषण दे रहे हैं, जो उरमें शोभा बढ़ाने वालाहोताहै। भूषण का अर्थ आप भूख क्यों लगा रहीहैं।

श्रीकिशोरीजी:—हे श्रीहृदयहार जू ! यदि गोरीहै, तो भगवान श्रीशंकरजी के उरमें जाकर लगे, हमारे उरमें लग- कर क्या सुख पायेगी।

श्रीरामजी:—हे श्रीप्राणप्रियतमे ! मैं जो कहता हूँ, उसका उल्टा ही अर्थ आप लगाती हैं। गोरी का अर्थ गौरी लगा रही हैं, यह भूषन तीन लड़का है।

श्रीकिशोरीजू:--हे श्रीराजिवलोचनजू ! लड़ै तो वह जिसके हृदय में ईर्षा हो, हमारे हृदय में तो ईर्षा है ही नहीं, तो मैं किस से लड़ूँगी।

श्रीरामजी:--हे श्रीप्राणप्रियाजू ! आप यह क्या खेल कर रहीहैं, देखिये, यह कर में लीजिये।

श्रीकिशोरीजू:--हे श्रीप्राणप्रियतमजू ! मैं किसके देश में रहकर व्यापार करती हूँ, जो कर धारते हैं, सो कर देवैं।

श्रीरामजी:--हे श्रीकिशोरीजू ! हम तो नग नील जड़े दे रहेहैं।

श्रीकिशोरीजू:--हे श्रीप्यारेजू ! आप सुनिये, निर्लज्जता तो वह करे जो जड़ होये, मैं तो लाजवती हूँ।

श्रीरामजी:--हे प्यारीजू ! आप यह क्या बोल रही हैं, वर बैन कहिये।

श्रीकिशोरीजू:--हे श्रीप्राणवल्लभजू ! श्रेष्ट बचनतो वह कहे जो छन्दादि पढ़ा हो, मैं तो छन्द नहीं पढ़ी, तो वर बैन कैसे कहूँ।

श्रीरामजी:--हे श्रीप्रियाजू ! वतियाँ तो आप उत्तम छन्द ज्ञान की कर रही हैं।

श्रीकिशोरीजू:--हे श्रीप्राणनाथजू ! वातीतो वह वनावै जिसको दीपक जलाने का काम पड़े, मैं वाती क्यों वनाऊं।

श्रीरामजीः--हे श्रीप्राणवल्लभाजू ! हम तो यह कह रहे हैं कि विदग्धा नारियोंमें आप शिरमौरहैं, केवल मेरी परीक्षा करने के लिये अति मुग्धत्व जनारहीहैं। यह सब आपका खेल है, किन्तु बचनों से प्रतक्ष दरसा रही हैं, देखिये अर्थ तो महा विदग्धत्व के लगाईं, परन्तु वाह्य दृष्टि से मुग्धत्व दरसातीं हो, अस्तु हमारा कहना यथार्थ हुआ,इससे हमको अब पुरुष्कार दीजिये ।

श्रीकिशोरीजूः--अच्छा ! हे प्यारेजू ! पुरुस्कार लीजिये, यह श्रीमिथिलाजी का है ।

❋ श्रीप्रियाप्रीतमजू का हार्दिक भाव ❋

श्रीरामजीः--हे श्रीप्राणप्यारी जू ! आपसुनिये, मैं सपथ करिके और छल छोड़िके सत्यकहताहूँ। जगत मात्रमें आपके सम्बन्ध के साथ हमको सबके साथ सम्बन्धहै। और आपके सम्बन्धकेबिना-हमको किसीके साथ सम्बन्ध नहीं है । यह हमारा सहजस्वभावहै, देवराजका दुर्लभसुख, पिता-माताका जो सुख, परिजन और राजसमाज और सुसेव्य मित्रोंका जो सुख, चन्दन चूर कपूर अतर आदि अंगराग का जो सुख, पुनः सुखदकाल, वर्षा, शर्द काल, हेमन्त, शिशिर, फाग,

इन सब ऋतुओंमें स्त्रियोंके संग रासविहार गान-तान जन्य जो सुख हैं। सो हे प्राणप्यारी जू! मैं कहाँ तक गिनाऊँ, हमको सुखी करने वाले त्रैलोकमें जितने भी सुख हैं, वह सब आपके विना निरस और दुख के स्थान हैं। हमारी युवावस्था और सौन्दर्य्य, माधुर्य्यादिगुण ही कमल के बनहैं। इन सबों को प्रकाशित करने के लिये आप ही सूर्यरूपहैं। हे श्री-प्राणप्यारीजू! आपको बिना देखे हमको एक पल कल्प के सदृश्य व्यतीत होता है। और आपके मुख-चन्द्र देखने में जो पलक पड़ता है, वह हमें महादुख प्रद प्रतीत होताहै। इसलिये हम तो ब्रह्मा की निन्दा ही करते हैं। और प्रेमरस से विहीन ही समझते हैं। क्योंकि जिसको प्रेमकी पहिचान ही नहीं है। यदि प्रेमकी पहिचान होती, तो नेत्रोंके ऊपर पलक नहीं बनाता। जो अपने परमप्रिय के मुखकमल देखने में बाधा डालता है। और हे श्रीलाड़िलीजू! आप हमारे श्रवण नयन और मनमें बसती हैं। अर्थात् श्रवण से परोक्ष में आपके सौन्दर्य्य माधुर्य्यादि गुणों को सुनते हैं। और नेत्रों में अहर्निशि आपके रूप को बसाये रहते हैं। और मन से परोक्ष में आपके माधुर्य्यादिगुणों का मनन किया करते हैं। इसके भिन्न और कुछ भी नहीं सोहाता है। और आपकी बाँकी चितवनि केऊपर, अपने सर्व सुख तथा सर्वस्व

न्यौछावर करते हैं। और हमारे हृदयानन्दवर्धनका कारण आपहीहैं व हमारे प्राणरक्षा की संजीवनी भी आपही हैं। हे प्रिये! हमतो अपने भाग को धन्य मानते हैं। जो कि आप ऐसी प्राणप्रियतमा मिलीं-और हे प्राणवल्लभे, आपके जो सम्बन्धी वर्ग हैं। वह चाहे कैसेहू क्यों न हों, परन्तु हम उनका मुख सदा देखा करते हैं, और उनसे यही कहा करते हैं, कि—आप सब हमारे ऊपर प्रसन्न तो हैं न, आप सबों का धन्यभाग है, जो कि आप सब हमारी श्री-प्रियाजूकी सम्बन्धी हैं। हमारे ऊपर भी नेह की निगाह बनाये रहियेगा। हे प्रिये! बहुत कहाँ तक कहूँ, आपकी दासी वर्गके मैं सदा आधीन हूँ, सब कुछ देकर भी उनसे दीन होकर रहजाता हूँ। और कहता हूँ कि इनके योग्य मैने कुछ भी नहीं दिया है-इनका मैं ऋणी हूँ।

दोहाः-प्रेम भरे प्रिय वचन सुनि, प्रिया मधुर मुस्काय।
वारि बिभूषण वचन पर, लिये लाल उर लाय॥ १॥
प्रेम भरे रसमें पगे, प्रीतम हिय की बात।
सुनि प्यारी पुलकित भईं, बोलीं मृदुमुस्कात॥ २॥

श्रीकिशोरीजीः—हे श्रीप्राणप्रीतमजू! आज मैं भी आपसे अपने हृदय की बात सत्य कहती हूँ। हमारा जब से आवि-

र्भाव हुआ, और जबसे हमको, स्वस्वरूपका बोध हुआ, तब से आगन्तुक गुरुजनोकी शिक्षासे व अपने स्वभावसे, यावत्‌विद्या यावतकला, जहाँतक जो इस शरीरके सुखउत्पादक हैं, वह सब। पुनः यावत हमारी वस्तुयें हैं। जिन सबको हम में ही स्वामित्व है, मेरे द्वारा ही जिनका पालन पोषण होरहा है, और जहाँतक हमारे अङ्गभूता हमारी सखी हैं, और यावत हमारे सुख उत्पादक शरीर के अंग हैं, यदि वे आपके लिये न होयँ, तो उसी समय मैं इन सब को त्याग करदेऊँ। और हे श्रीप्राणप्रीतम जू! आपके वियोगमें यावत हमारे सुखदायक पदार्थ हैं, तावत्‌दुखदायक होतेहैं। और आपके संयोगमें, यावत् दुखदायक, पदार्थ हैं वह भी सुखदायक प्रतीत होते हैं। और हमने जो अपने अंगोंका पालन पोषण कया है, वह आपके ही निमित्त हैं। इन सब वस्तुओं के बीचमें जिस समय हमें अपने सुखके मनोरथ उठें, तो मुझे मरणान्त दुख होवै। हे श्रीप्राणवल्लभजू! यदि मेरे प्राणोंके द्वारा आपको सुख प्राप्त हो, तो मैं अपनाप्राणदेकर भी आपको सुखी करूँ।

✱ भक्त लक्षण वर्णन ✱

श्रीकिशोरीजी:—हे श्रीप्राणवल्लभजू! आप अपने किन भक्तों को अधिक चाहते हैं। तथा उनके लक्षण क्या हैं। यह जानने की मेरी प्रबल इच्छा है।

श्रीरामजी:--हे श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजू! आपने यह परम मधुर प्रश्न करके, मेरे परमप्रिय भक्तों का स्मरण दिलाकर, मुझे अत्यन्त अह्लादित किया है। आपकी बलिहार। अब आप मेरेभक्तों के विषयमें सुनिये।

दोहा:-सर्वभूत मोहि एक सम, द्वेषी हितू न कोइ।
भक्ति भाव युत जो भजे, मोर परम प्रिय सोइ ॥१॥
यद्यपि प्राणीमात्र सब, हैं मेरे ही अंश।
सबको अंशी भोक्ता, हौं ही सब अघ ध्वंश ॥ २॥

वार्ता:—हे श्रीप्राणवल्लभे! समस्त प्राणी मेरीही सृष्टि हैं, अतः सभी जीव मेरेलिये समान हैं। किन्तु जो प्रेम पूर्वक भक्तियुक्त मेरा भजन करता है, वही मेरा परम प्रिय-सच्चा भक्तहै। वैसे तो मेरे भजन करनेवालेभक्तों की चार श्रेणियाँ हैं। यथा १-आर्त २-जिज्ञासू ३-अर्थार्थी ४-ज्ञानी। आर्त वे भक्तहैं, जो अपने कष्ट निवारणार्थ मुझे भजते हैं। जिज्ञासू वे भक्त हैं, जो

मेरी विभूति, गुण, ऐश्वर्य, एवं महिमादि को जानने की रुचि से, मुझे भजते हैं। अर्थार्थी वे भक्त हैं, जो अन्न धनादि इहलौकिक सुखों की उपलब्धि हेतु मेरा आश्रय लेते हैं। ज्ञानी वे भक्त हैं, जो मुझे सब त्मना समझकर मेरा भजन करते हैं। किन्तु हे प्रियतमे ! इन सबसे प्रियतम मेरे प्रेमीभक्त हैं, वे मेरे प्राण हैं। वे मेरे जीवन हैं। तथा वे मेरे सर्वस्व हैं।

दोहाः-तिन बिन मैं ते मोहिं बिन, रहि न सकौं पलएक।
जिमि मीनहिं गति बारिहीं, तजै प्राण नहिं टेक ॥३॥

वार्ताः--मेरे प्रेमीभक्त, मुझपर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर, प्रेम दीवाने बने हुये जड़ोन्मत्त, पिशाचवत्, स्थितियों में रहकर प्रेम सुधा में छके हुये यत्र,तत्र,सर्वत्र, मुझ परमप्रिय को ही देखते हैं। और भजते हैं, वे अकुतोभय होजाते हैं। उनकी दशा सुनिये।

न लाजतीन लोक की, न वेद को कह्यो करे।
न शंक भूत प्रेतकी, न देव यक्षसे डरे॥
सुनै न बात औरकी, दिखै न और इच्छना।
न कहै न बात और की,सु भक्ति प्रेम लक्षणा ॥

❋ भक्तों की दशा ❋

श्रीकिशोरीजी:--हे आत्मनाथ ! आप अपने प्रेमीभक्तोंके लक्षण तथा उनकी स्थितियों का वर्णन कीजिये।

श्रीरामजी:--हे हृदयेश्वरी प्रेमरसवर्धनीजू ! मेरे प्रेमीभक्तोंके लक्षण परमविलक्षण अनन्त हैं, उनकी स्थितियाँ भी कई प्रकार की हैं। उनमें से मैं कुछ बतला रहा हूँ, आप सावधान होकर सुनिये।

निशिदिन परोसनेह देह अरु गेह भुलाने।
मम दर्शन को आस प्यास अति दृग ललचाने॥
मेरी लीला ललित कलित गुण शील सुभाऊ।
कहत सुनत सर्वदा हृदय पावत अति चाऊ॥
अतिसय प्रेमावेश में, निशि दिन रहत विभोर हैं।
मेरी मंजुल मूर्ति मृदु, ध्यावत वनि रस बोर हैं॥१॥
कबहुँक हँसि उठि नृत्य करत रोवन पुनि लागे।
कबहुँक गद गद कण्ठ बचन निकसै नहिं आगे॥
कबहुँक ह्वै उन्मत्त अधिक ऊँचे स्वर गावै।
कबहुँक ह्वै मुख मौन गगन जैसो रहिजावै॥
प्रेम नेम मोंहि से लग्यो सावधान कैसे रहें।
प्रेम लक्षणा भक्ति यह कोइ कोइ प्रेमी निर्बहें॥

हे श्रीप्रियाजू ! मेराप्रेमी प्रेममें मतवाला होकर, कभी तो हसनेलगता है, कभी रोने लगता है। कभी वाणी गद्‌गदहोजातीहै, मुखसे एक भी शब्द नहीं निकलता

है। कभी पागल की भाँति ऊँचे स्वर से गाने लगता है, और कभी एकदम चुपचाप होजाता है। किन्तु ऐसी परम विलक्षण मेरी प्रेमाभक्ति किसी किसी को ही प्राप्त होती है मैं ऐसे प्रेमियों की स्वयं ही सदा सम्हार करता हूँ।

सन्तत रच्छा करौं संग छिनहीं छिन डोलौं।
देऊँ पन्थ बुहार चलत कण्टकन टटोलौं॥
जब हँसि नृत्यन लगत, तबहिं मैं व्यजन ढुरावौं।
रोवत तब दृग पोंछि अश्रुजलशीश चढ़ावौं॥
इमि अभिन्न दोउ सुख मगन रह्यो परस्पर वार हैं।
प्रेमिन प्रेम विचित्रगति को पुनि पावै पार हैं॥

वार्ता:--मैं अपने भक्तों की सर्वदा रक्षा करता रहता हूँ। गुप्त रूपसे सदा ही उनके साथ में रहता हूँ। अपने प्रेमियों का मार्ग मैं स्वयं ही साफ करता रहता हूँ। जहाँ मेरे प्रेमी भक्त चरण रखते हैं, वहाँ पर मैं अपना हाथ रखता हूँ। और जब मेरा प्रेमी प्रेम में मतवाला होकर नाचने लगता है, जब उसके प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। तब मैं उसके ऊपर पंखा झालता हूँ। उसके प्रेमाश्रुओं को पोछकर मैंअपने शिरपर धारण करता हूँ। इस प्रकार मैं और मेरेप्रेमी एक दूसरे पर न्यौछावर रहते हैं।

* श्रीकिशोरी जू की करुणा *

श्रीकिशोरीजीः—हे रसिकशिरोमणि श्रीप्राणप्रीतमजू ! संसार के दुखी प्राणियों को देखकर मुझे महान क्लेश होता है। कृपया आप इनके सुख का बिधान बनाइये।

श्रीरामजीः--हे श्रीप्राणप्रियतमाजू ! दुखी प्राणियों को देखकर, करुणासे भरकर अधीरहोना, यह आपके स्वभावानुकूल ही है। किन्तु हे प्रिये, मैं क्या करूँ। यह जीवात्मा मेरा चिदांशहोतेहुये भी, अपने ही भ्रमवश अज्ञानता के कारण, अपना सहज सुख स्वरूप बिस्मृत कर, क्लेशानुभूति करने लगता है। बन्धन और मोक्ष दोनों इसके ही अपने भ्रम हैं।

दोहाः—प्रिये मोच्छ भव बन्ध दोउ, भ्रम अज्ञानहि माहिं।
नतरु जीव चिदअंशमम, आगम निगम कहाहिं ॥१॥
निर्मल निर्मम एकरस, सहजहि सुखकी खान।
भ्रमवश भूलि स्वरूपनिज, भोगत दुःख महान ॥२॥
लखचौरासी योनिमें, भटकत बारम्बार।
निशिवासर दुख पावहीं, हा हा करत पुकार ॥ ३ ॥

पदः—निज भ्रमवस स्वरूप बिसरायो।
ममता मोह कोह मद लोभहिं, निज मन माहिं बसायो ॥

सौरभ उदग भ्रमत बन में मृग, तैसेहि जीव भुलायो।
जिमिकपिआपन मूठि न छोड़त,परवश अतिदुख पायो ॥
ऐसेहिं शुकपकरति नलि नीको,अति अज्ञान समायो।
तैसेहिं मेरो अंश जीव यह, मायामें लपटायो ॥

वार्ता:--हे श्रीप्राणप्यारीजू ! यह जीवात्मा मेरा सखा है, अतः यह मुझे अत्यन्त प्रिय है। मेरी समस्त चेष्टायें इसके ही सुखार्थ हुआकरती हैं। अपने ही अज्ञानके कारण अपने सुख स्वरूपके विस्मृतहोजानेपर, यह मेरे सम्बन्धको भुला देताहै। मुझसे सम्बन्ध विच्छेद करलेना ही, सबसे बड़ा दुखद अज्ञान है। और मेरे सम्बन्ध को स्मरण करना ही, सबसे श्रेष्ठ परम योग है। मेरा सम्बन्ध जप, तप, व्रत, मख, उपबासादि की अपेक्षा नहींरखता है । बश यहजीवएकबारभी, संसारसे मुड़कर कहदेकि- मैं आपका हूँ, आप हमारी रक्षा कीजिये। तभी यह जीव सर्वथा निर्भय हो सकता है। यद्यपि मैंने यही दृढ़ प्रतिक्षा की है कि-

अभयं सर्व भूतेभ्यो, ददाम्येतद्व्रतंमम ॥

हे श्रीप्राणसंजीवनीजू ! किन्तु यह जीव मेरी मैत्री को तो, स्वीकार हीं नहीं करना चाहता है । मैं तो सर्वदा दोनों भुजायें उठाकर, इससे मिलने के लिये उद्यत रहता हूँ। किन्तु यह तो संसार की ओर मुख और

मेरीओर सदापीठ ही किये रहता है। समस्त सुख तथा रसोंका एकमात्र केन्द्र मैं ही हूँ, सो मुझे छोड़-कर अन्यान्य पदार्थों में अन्यत्र ही सुख तथा रस खोजता रहता है। पर विचारा कभी भी सुख नहीं पाता, जब तक मुझसे सम्बन्ध स्थापित नहीं करेगा-तबतक आपही कहिए, कि इसे सुखशान्ति किस प्रकार मिल सकती है। जो इष्ट-अनिष्ट-प्रिय-अप्रिय-सुख दुःखादिकों की, द्वन्दातमक भावनाओं से सर्वदा संयुक्त है, उसे सर्वत्र भय ही है। जबतक भय नष्ट न होगा तबतक शान्ति कहाँ मिलेगी। जो मेरा प्रिय भक्त बनजाता है। वह मेरे इस अभयं सर्व भूतेभ्यो-ददाम्येतद्व्रतंमम' के वल पर, त्रिलोकमें निर्भय होकर, बिचरण करता है। निर्भयता का आदर्श उपस्थित करने वाले, भक्तराज श्रीप्रहलादजी को देखिये। क्रूर स्वभाव वाले दुरात्मा हिरण्यकस्यप के पूछने पर उस बालक ने उत्तर दिया, कि-भयं भयानां विहारिणास्थिते। अस्तु प्रिये जीव तो हमारा होकर ही सुखी रह सकता है। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

* सत्संग महिमा *

श्रीकिशोरीजीः--हे श्रीआर्यनन्दनजू ! मैं आपसे एक बात पूछना चाहती हूँ।

श्रीरामजीः--हे प्रिये ! आप जो कुछ पूछना चाहती हों, संकोच त्यागकर पूछिये।

श्रीकिशोरीजीः--हे श्रीजीवनधनजू ! आप कृपाकर यह बतलाइये कि संसार में सर्व श्रेष्ठ वस्तु कौन सी है।

श्रीरामजीः--हे प्रियतमे ! मेरे विचारसे तो संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु सत्संग है।

श्रीकिशोरीजीः--हे श्रीकमललोचनजू ! सत्संग में ऐसी क्या विशेषता है, कि जिससे आप सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं।

श्रीरामजीः--हे श्रीप्राणप्रियाजू ! इस जगत में सच्चे संतों का संग अत्यन्त ही दुर्लभ है। यथा--महत् संगो दुर्लभो, अगम्यो, अमोघश्च। अच्छे महानपुरुषों का संग संसार में मिलना कठिन है, यदि प्रभु कृपा से प्राप्त भी हो जाय, तो उनको पहचानना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि-महानुभाव अपने गुणोंको छिपाये ही रहते हैं। उनका वेष विचित्र ढंग का होता है, जिसे देखने वाले को भ्रम हो जाता है। किन्तु यदि आपकी अहैतुकी असीम अनुकम्पा हो, तो, जीव उन्हें पहचान

पाताहै उन महानपुरुषों से परिचय प्रेम हो जाने पर, जीव अवश्य मेव ही मेरी कृपा का पूर्ण अधिकारी बनजाता है। उसे मेरे बास्तविक ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। वह जीव महानुभावों की कृपासे हमारे गुप्त रहस्य को भली भाँति जानजाता है। कारण यह है कि--संतों के दर्शन से पाप नष्ट होजाता है। शास्त्रों का कथन है कि--

श्लोकः-साधुनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूताहि साधवः।
कालेन फलते तीर्थः सद्या साधु समागमः॥

अर्थः--साधुओं के दर्शन मात्र से ही महान पुण्य का फल, सहज ही में प्राप्त हो जाता है। तीर्थों में तो बहुत दिन तक बासकरके साधनकरने पर फल प्राप्त होता है। किन्तु संतों का तो सत्‌संग होते ही, तत्काल वही फल प्राप्त हो जाता है। जैसे पारसके छूते ही लोहा सोना बनजाता है। ऐसेही नीच, अधम, पापो, जीवभी सत्‌संगसे निर्मल महात्मा बनजाते हैं। इस पापमय स्वार्थरत संसारमें, यदि मेरे प्रिय संत न होते, तो यह जगत घोर रौरव नर्क ही बनगया होता। इस दुखमय जगत को, साधुओं ने ही अपने जप तप तथा ज्ञान विज्ञान के द्वारा, अपने शुभ उपदेशों से, मंगल-मय बना रक्खा है। संतजन बड़े-बड़े बिघ्नों का सामना कर के भी, जगत को प्रकाशमय मार्ग दिख-

लाते रहते हैं। दुष्टोंकेद्वारा निन्दा तथा ताड़ना सहकर भी, वे धर्म का डंका बजाते हुये, सदा परोप-कार में ही लगे रहते हैं। जो संसारी जीव, अनन्त जन्मोंसे दुःख ही भोगते चले आ रहे हैं। उन पर दया करके, दिव्य विभूति सम्पन्न संतों ने ही, बड़े-बड़े ग्रन्थों की रचना करके, विश्वको विज्ञानमार्ग, योगमार्ग, तथा भक्ति मार्ग, दिखलाकर मेरी प्राप्ति के उपाय बतलाये हैं। ऐसे निर्विकार तपस्वी संतोंका सत्संग मोक्ष प्राप्त कराने वाला होता है। इसलिये सत्संग ही सर्वश्रेष्टतम साधन है।

श्रीकिशोरीजी:—हे श्रीहृदयरमनजू ! आपने सत्संग की अद्-भुतमहिमा गाई है, सो ठीक है। किन्तु ऐसे संतों की पहिचान क्या है। सो कृपा करके, सच्चे संतों के लक्षण भी बतलाइये।

श्रीरामजी:—हे श्रीसर्वेश्वरी जू ! आप सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जानती हैं। फिरभी मैं आपके प्रश्नका उत्तर देता हूँ। सच्चे संतों की पहिचान यह है, कि-जिसे दुःखमय संसार की वस्तुओंसे वैराग्य होगया हो। जो गृह-जाल तथा विषयों को विष मानकर त्यागचुका हो, वही सच्चा संत है। अपने गुरुदेव तथा संतों की सेवा करके, जिसने आत्मज्ञान और मेरा साक्षात प्राप्त किया हो। अथवा काम, क्रोध, लोभ, मोह,

सबको त्यागकर कर जो मेरी प्राप्तिके लिये तपस्या कर रहा हो। वही सच्चा संत है। जो चलते फिरते हर समय, मेरे नामोंका जप करते हुये गद्गद हो, मेरे विरहमें प्रेमाश्रु बहाते रहते हैं। तथा सभी जीवों के हि : साधन में, जो तत्पर रहते हैं, वही सच्चे संत हैं।

श्रीकिशोरीजी:—हे आनन्दकन्द श्री प्राणनाथजू ! सच्चे संत तो छिपे ही रहना चाहते हैं। वह बाहरी दिखावा नहीं करते। किसी संतके व्यवहार आचरणों से ऐसा प्रतीत होता है, कि-यह संत नहीं हैं। परन्तु वे सिद्ध संत होते हैं। उन्हें कैसे पहचाना जाय। और कोई बाहर से देखने में, परम तपस्वी लगते हैं, किन्तु अन्दर उनका हृदय कपट पाखण्ड से भरा रहता है। प्रभो लक्षणोंसे उनकी पहिचान, कैसे की जा सकती है। कृपा करके यह भी समझाइये।

श्रीरामजी:—हे श्रीप्राणप्रियतमे ! यह आपने बहुत उत्तम प्रश्न किया है। वास्तव में मेरे सच्चे संत तो, छिपना ही चाहते हैं। वह बाहर से चाहे भले ही न दीखें, परन्तु अन्तर हृदयसे पूर्ण रहते हैं। जो ऊपर से अपनी रहनी सुन्दर बनालेते हैं। और यदि उनके हृदय में काम क्रोधादि भरे हैं, तो उनकी पहिचान करना कठिन है। परन्तु शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान तो, संत वेष का

ही सम्मान करते हैं। चाहे वह संत हों, या असंत हों। संत बेष ही की पूजा का महात्म है, उनके अव-गुण तथा दोषों से आवश्यकता नहीं, उनके शुभ उपदेश को ग्रहण करले, और अवगुणों की ओर ध्यान न दे। यथा अशुद्ध स्थल पर पड़ा हुआ रत्न को देखकर पारखी उठाकर धोलेता है। उस स्थल से कुछ भी आवश्यकता नहींरखता, उसी प्रकार संतोंके दोषों पर विचार न करके, गुणों को ही ग्रहण कर-लेना चाहिये। उत्तम विचार बताने वाला, साधु असाधु गृहस्थ विरक्त कोई भी हो। उससे ज्ञान सीख ले। कभी भी किसी की निन्दा नहीं करे। दूसरे की निन्दा करने से वही दोष अपने में आने लगते हैं। भ्रमर के समान सभी के अवगुणों को त्यागकर गुणों का ही ग्रहण करना चाहिए। संतरूपी पुष्पों का शुभो-पदेश रूपी मकरन्द पान करके आत्मानन्द सागर में डूबना ही परम पुरुषार्थ है।

निजजनकि रुचिकोरखना, यहीकाम है मेरा।
संसार भक्तवत्सल, इमिनाम है मेरा॥
कहते हैं यद्यपि व्यापक, सब लोग ही मुझे।
यद्यपि हृदय सुभक्त का, निज धाम है मेरा॥
क्या वाल युवा बृद्ध हैं, क्या उत्तम मध्यमा।
है श्रेष्ट वही गाता, जो गुण ग्राम है मेरा॥